साँझ का सूरज

(कविता-संग्रह)

कवयित्री

डॉ॰ तारा सिंह

मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली-110092

ISBN : 978-81-89264-

प्राप्ति-स्थान :

कवयित्री डॉ. तारा सिंह
बी-605, अनमोल प्लाजा,
प्लॉट नं.-7, सेक्टर-8,
खारघर, नवी मुंबई-410210
दूरभाष : (+91)9322991198, (+91)9967362087

Websites :
(i) www.poetrypoem.com/tarasingh
(ii) www.poetrypoem.com/poetic13
(iii) www.writebay.com/tarasingh
(iv) www.writebay.com/poetic13
(v) www.poetryvista.com/poetic13
(vi) www.poetryvista.com/tarasingh
(vii) www.sawf.org
(viii) www.poemsnpoetry.com
(ix) www.hindi-gazals.blogspot.com
(x) http://sharepoetry.com/user/show/tarasingh
(xi) www.desiclub.com
(xii) www.mcl.org
(xiii) www.storypublisher.com/tarasingh
(xiv) www.indolink.com
(xv) http://hindipoems.spaces.live.com
(xvi) http://www.kaavyanjali.com
(xvii) www.kavitakosh.org
(xviii) www.srijangatha.com
(xiv) www.writers-club.com
(xx) www.sahityakunj.net
(xxi) www.swargvibha.tk

Above sites included in search engine database of altheweb.com, yahoo.com, altavista.com & google.com

मीनाक्षी प्रकाशन
Meenakshi Prakashan
एम.बी. 32/2बी, गली नं. 2,
शकरपुर, दिल्ली-110 092
द्वारा प्रकाशित
© लेखिका
मूल्य : 60.00 रु.
प्रथम संस्करण, 2009 ई.
आवरण : बी.पी. सिंह
बी.के.ऑफसेट, नवीन शाहदरा,
नई दिल्ली—110 032 द्वारा मुद्रित

SANJH KA SURAJ
by *Dr. Tara Singh*

स्मतिशेष पिताश्री एवं माताश्री के प्रति

मुझे छोड़ अकेला दुनिया में
क्यों खिसक गये तुम दोनों धीरे से
व्यथित प्राण मेरे पूछ रहे तुम दोनों से
अब कौन पहचान करायेगा मुझको
यहाँ जीवन के सुख-दुख से

—तारा

अपनी बात

'साँझ का सूरज', मेरा सतरहवाँ काव्य-संग्रह है। इसमें कुल मिलाकर 33 कविताएँ संगहीत हैं, जो देश -काल, विरह-वेदना, संस्कति, ओस, तारे, नदी-झरने जैसी प्राकतिक वस्तुओं को अपनी कल्पना की तूलि से रंगकर, इस काव्य संग्रह को इकट्ठा किया है। इसमें सार्थकता का बोध भी भरने की मैंने भरसक कोशिश किया है।

मेरी रचनाओं में जीवन से जुड़ी, जिंदगी के उठा-पटक, नये युग के कई स्तरों को छूती भावनाओं की सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रयास किया है। प्रकति सौंदर्य, दैनिक विपदाएँ, जिंदगी से जुड़े रोग-दुख, विरह-वेदना की झाँकियाँ मेरी कविताओं का प्रमुख अंग रहा है; इसलिए मेरा ऐसा विश्वास है कि मेरी यह काव्यकति, **'साँझ का सूरज'** पहले के काव्य कतियों के मुकाबले, मेरे पाठकों को अधिक पसंद आयेगी। उनका अमूल्य समय इसे पढ़कर व्यर्थ नहीं जायेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी कविताओं में राग-विराग का समन्वय रहे, मैंने इसका भी पूरा-पूरा ख्याल रखा है। अपनों की अवहेलना को न सह सकने के अभिप्राय में, हमारे परिवार के वयोवद्धों के विचार में जो जगत के प्रति विरक्ति अथवा उपेक्षा पाई जाती है; इसे मैंने अपनी कविता शीर्षक 'मैं बूढ़ा पथिक इस जग का' में उद्धत करने की कोशिश की है।

मनुज जाति की चेतना, नये युग में कितने ही परिवर्तनों और हाहाकारों से होकर विकसित हुई है। कितनी ही शक्तियाँ, अपने जीर्ण-जर्जर जीवन के अस्तित्व को बचाये रखने के लिए, अपने बिलों से फन उठाकर, फुफकार रही हैं। मानव जाति प्रलय वेग से, तिमिर अंधकार में कैसे बढ़ती जा रही है, कुछ वर्षों बाद मानव सभ्यता किस ओर जाने के लिए उताहुल खड़ी है, धरती के जीवन का भावी निर्माण, देशद्रोही अपने स्वार्थ के लिए किस दिशा में कर रहे हैं। इन सभी शंकाओं को मैंने अपनी कविता शीर्षक 'क्या यही हमारा हिंदुस्तान है' द्वारा पाठकों को परिचित कराने के साथ-साथ बचे रहने के लिए भी आह्वान किया है।

'साँझ का सूरज' कति में, कुछ कविताएँ, जैसे 'माँ! आज तुम्हारी पुण्यतिथि है', वैयक्तिक भी है और 'तू आज छोड़ चला कुसुमों की छाया', 'प्रेम-प्रेम क्यों पुकार रहा रे', 'लौटा दो वह बचपन मेरा' आदि सामाजिक भी हैं और इन सबसे अलग विलुप्त होती जा रही जीवनदायिनी 'गंगा' मैली क्यों है—इसके लिए देश, विश्व, व्यक्ति और समाज, सबों को मिलकर अपने हृदय मंथन

की जरूरत है। 'गंगा' शीर्षक कविता के अंतिम चरणों के इन पंक्तियों में अपने विचार के अलावा मैंने अध्यात्मवाद का भी समरस बनाये रखने का प्रयास किया है, जो हमारा वैयक्तिक न होकर, वस्तु प्रधान के साथ-साथ सामाजिक है—

कौन सुनाएगा वन विटपों के डाल-डाल को
हिला-हिलाकर, उस नील नीरव का झंकार
जहाँ से, अदश्य -हाथ, बाँटता रहता कनियार
कौन आत्मा की भू पर, बरसाकर अकुल प्रकाश
ग्यान, भक्ति गीता का करेगा, शोभन विस्तार।

दूसरी कविता शीर्षक 'चलता हूँ, मैं कहाँ अकेला' के इन पंक्तियों में—

तुम जो मेरे संग न चलती
प्रिये मेरी पथ-प्रदर्शिका बन
तो जरा भी संशय नहीं कि
मैं कब का टूटकर बिखर गया होता
तुमने खुद को देवों को किया समर्पित
मेरे लिए तो तुम खुद देवी हो
चलता हूँ मैं, कहाँ अकेला
तुम जो मेरे संग चलती हो।

पाठकों का ध्यान आकर्षण करना चाहती हूँ कि उपास्य के हृदय में, केवल आत्मा की अधीरता ही नहीं, बल्कि उसके साथ-साथ हृदय की विह्वलता, प्रसन्नता भी होनी चाहिए। यही उपास्य की उच्चता होती है। दूसरी कविता 'वसंत', चाहे कितना बड़ा क्रांतिकारी क्यों न हो, इसके आने से उनके दिल में भी गुदगुदी होने लगती है। इसी तरह 'भगवान महावीर जैन', 'कष्णाष्टमी' आदि धार्मिक कविताएँ समाज को आपस में जोड़े रखने की एक लौह कड़ी हैं और किसी देश के उत्थान की कुंजी भी। अन्य कवियों की तरह मैंने भी सत्य के अनेक व्यक्त-अव्यक्त खंडों को जोड़कर **'साँझ का सूरज'** स्वरूप एक मूर्ति गढ़ने की कोशिश की है। मेरी यह जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक होगी कि मेरे पाठकों के हृदय में इस काव्य-संग्रह को कितनी जगह मिलती है। ऐसे तो मैंने अपनी बिखरी अनुभूतियों को एक जगह जमाकर, उन तक पहुँचाने की जी-तोड़ मेहनत की है। इस कविता-संग्रह को पूरा करने के लिए, जहाँ से मुझे बुद्धि-विवेक और धैर्य मिला; उस आदिशक्ति माँ काली के चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम।

—तारा सिंह, मुंबई

अनुक्रम....

सरस्वती-वंदना 9
मैं बूढ़ा पथिक इस जग का 10
अम्बर छोड़ चला दिवाकर 12
कोई आकर बैठ जाती क्लांत, उदास 14
तू आज छोड़ चला कुसुमों की छाया 16
प्रेम-प्रेम क्यों पुकार रहा रे 18
लौटा दो वह बचपन मेरा 20
विधवा 23
अब कैसी आशा समर विजय की 25
जिंदगी तू बैठ यहीं 27
धूल-धुँध में अग्नि बीज बो रहा 29
चित्रित तुम, मैं रेखा-क्रम 31
जिंदगी तू बैठ यहीं 33
जिसके लिए लगाती हूँ अश्रु की हाट 34
तीनों काल मुझमें है निहित 36
वह कौन है 39
प्राणाकांक्षा 41
मन तू हौले-हौले डोल 43
हम विहग चिर क्षुद्र 45

माँ! आज तुम्हारी पुण्यतिथि है 47
चलता हूँ मैं कहाँ अकेला 50
गंगा 51
वट वृक्ष 53
वीरगाथा 55
विजयादशमी 58
कृष्णाष्टमी 60
हे सारथी! रोको अब इस रथ को 62
महँगी 64
धरा पर आया है वसंत 66
होली 67
क्या यही हमारा हिंदुस्तान है 69
मनुज देह अवतरित हुए श्रीराम 72
भगवान महावीर (हमारे जगत पिता) 74

सरस्वती-वंदना

जय शारदे! माँ शारदे!
भव कानन हरित धरा दे
दग्ध हिय चंदन बना दे
उर से एक बार लगा ले
जय शारदे! माँ शारदे!

मन उदास, तन क्षीण है माँ
तू दानी, मैं दीन हूँ माँ
जीवन को कर तार दे
जय शारदे! माँ शारदे!

ग्रीष्म ताप, तपित रज में
शीत पवन स्पर्श करा दे
बाँहों में साहस अभय दे
प्रिय विभा-सी उजियार दे

तन में नव स्फूर्ति दे माँ
साँसों में नई बयार दे माँ
कादंबिनी, सुधा नीर बहा दे
नाव को कर पार दे
जय शारदे! माँ शारदे!

मैं बूढ़ा पथिक इस जग का

मैं बूढ़ा पथिक इस जग का
मेरा न यहाँ अपना कोई
चलता हूँ मैं अकेला ही, मेरी
राह निज अश्रुजल से गीली

हिलते हड्डी के ढाँचे पर
जीवन का यह बूढ़ा पंजर
कभी ज्योति तमस, हिम आतप
मधु पतझड़ का था रंग स्थल

झाँझर-सा मुख निकला बाहर
कहता, जन्म शील है मरण
मर-मर कर जीवन रहता अमर
नवल मुकुल मंजरियों से भव
फिर होगा शोभित, आई है पतझड़

लघु-लघु प्राणियों के अस्थि-मांस से
बना है यह जग - घर
न्योछावर है, इस पर आत्मा नश्वर
गर्मी, शीत, वह्नि, उल्का के भू पर
कैसे रह सकता, मनुज कलेवर

जवानी के स्वर्ण-पिंजरे में बंद
मानव आत्मा दीखता तो सुंदर
मगर दुख, पीड़ा से पीड़ित, एकाकी
की शैय्या पर रहता चिर विह्वल

सोचता, नव प्रभात से चुंबित
रक्त कमल-सा यह जीवन
जिसके अधरों के शतदल पर
है मदिर प्रवाल का अधरामत
नीलकमल-सी नील आँखें
स्वर्ग प्रीति-सी होती प्रतीत

पलक झपकते अदश्य हो छुप जाता
जीवन की जिंदगी से यह कैसी प्रीत
रक्त सुरा संगीत बनाकर, उर-उर का
करता स्पंदन; जड़, चेतन एक ही पलकों
के पल्लव पर रहता है पल्लवित

आज राह पूछती कोयल प्यारी
ऋतुपति का कुसुम नगर कहाँ है री
कैसे बतलाऊँ मैं, उसे जब तुम
भुलाकर अपनी सुध-बुध, सोयी
थी पी के संग, तब मौत साँस
गिर रही थी, तुम्हारे मधु जीवन की

है भरा आज मेरी आँखों में
जग की दी पीड़ा का पानी
देखो कैसे जीवन का स्वर्ण महल
टूटकर बिखरने जा रहा धूलि में
मानो सैकत में खोती जा रही सरि

अम्बर छोड़ चला दिवाकर

प्रिये! अपनी बोझिल आँखें खोलो
देखो ऊपर आकाश की ओर
दिन भर सूरज लुटाकर अपनी विभा
अम्बर छोड़ चला पश्चिम की ओर

लगती काल जाल-सी निस्तब्ध निशा
धरा पर कुछ पल में ही बिछने वाली है
तभी नीलगगन में उड़ रहे भीत पक्षी
नींद सेज पर गिरने मचा रहे शोर
बच्चे दौड़ रहे, गायें भाग रहीं, वन को छोड़

धरती का अंचल फाड़, बादल कह रहा
यहाँ काल की लौह कारा में, हत जनभू-मन
जीवन जर्जर, पल-पल प्रकति का है आतंक
फिर भी मनुज यहाँ, निज भविष्य की चिंता में
वर्तमान का सुख देता छोड़
वारि का धार पकड़कर झूलता रहता
एक तार की साँस पर रहता डोल

मगर जीवन सरिता का यह कूल
दुख लहरों के दल से टकरा-टकराकर
एक दिन सदैव के लिए ओझल हो जाता
फिर भी मनुज समझता नहीं, जीवन का तोय
व्यर्थ ही लगाये रखता, अम्बर छूने की होड़

धरती-अम्बर के बीच भयंकर खाई है
यहाँ से जो दीख रहा, शून्य का घेरा
वह बिछा हुआ केवल भ्रमजाल है
जो जीवन की उलझन सुलझाता नहीं
बल्कि उलझाये रखता है
इसलिए पुलक हिलोर आती कहाँ से
उस उद्‌गम को ढूँढ़ना छोड़
अन्यथा रात बीत जायेगी, हो जायेगा भोर

प्रिये! हम दोनों थके भग्नांश पथिक हैं
जिनका पल-पल रक्त क्षय हो रहा
अब लेशमात्र भी शरीर में रक्त-मांस नहीं बचा
रुद्ध हो रही साँसें, बाहर बह रही सर्द हवा

इसलिए आओ चले चलें हम यहाँ से
हमारा ठहरना अब निराधार है यहाँ
ऊपर धीरता उधम मचा रही
विकम्पित हो रहा क्षितिज का छोर
कान देकर सुनो, श्मशान से
आ रहा रुद्र, शंगी रब रोर

कोई आकर बैठ जाती क्लांत, उदास

जब नील निशा के अंचल में
जग सो जाता, शांत चुपचाप
तब मेरी कामना की मूर्ति बन कोई
स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप लिये
कंपित अधरों से मुझे पुकारती
मेरे जीवन नद के मरु तट पर
आकर, बैठ जाती क्लांत, उदास

मुझसे कहती, आती-जाती, स्वर्ग-धरा करती
अब थक चुकी हूँ मैं, मेरे लिए मुश्किल
है उठाना जीवन एकाकी का मूक भार
इसलिए छोड़ धरा की मोह-माया, तुम
चले चलो मेरे संग, धूम कोलाहल, थकावट
मलिन अंचल से दूर, क्षितिज के उस पार

जहाँ नील सागर से बहता रहता शीतल जलधार
जिसमें स्नान कर, तन की सभी ज्वालाएँ मिट जातीं
नियति उड़ा नहीं पाती, मनुज पुत्र का उपहास
न ही महाकाल, नरमुंडों का बौछार कर
करा सकता, नर शोणित की मूसलाधार बरसात
न ही सष्टि शिराओं में जीवन, संचारित कर पाती
न ही सोते-जागते बालक, वद्ध हो जाते दूसरे ही प्रभात

यहाँ शिशिर-सा झड़ता नयनों से नीर
भावी तरु के नीचे रहता आशा का इंद्रजाल
साँसों को बाँधकर किये रखता अधीर
जगत का शत कातर चित्कार, बधिर का
कान बेधती, प्राणों के निकट प्राण रहता मलिन
विविध प्रहार कामना कर, जगत के उर का
तार छेड़ती, स्वर-लय में दुख गाता गीत
कहता लहरों का यह परिणत जीवन
यहाँ मिलते आहत होकर जलकण
अखिल विश्व का, विष पीती जहाँ सष्टि, उसमें
अमरशीलता, शीतलता कहाँ से आयेगी

वहाँ हंस-पाँति सा पवन चलता
नीरव मुकुलों में मूर्तित, स्मतियों की
मालाएँ होतीं, कुहासों के क्षितिज को चीरकर
सूरज नव भविष्य की झाँकी दिखलाता
सीपी के रंग का नभ, नव मुक्ता से भर
सहज हँसता-सा, सुंदर लगता
यहाँ श्रांत पाथ-सा, ग्रीष्म ऊँघता नित

इसलिए चले चलो यहाँ से, हमें नहीं सुननी
पत्रों के अस्फुट अधरों से, दुख पीड़ा का गान
बल्कि हम भी, चूर्ण शिथिलता-सी अँगड़ाकर
क्यों न हो जायें शून्यता में अंतर्धान
वहीं नभ तरु के भव्य अंचल में
लगकर एक दूजे से गले, जुड़ायेंगे प्राण

तू आज छोड़ चला कुसुमों की छाया

परदेशी, इस वन में कब तू आया
जो संचित कर, पत्रों के अस्फुट अधरों में
अपना दिवस आलाप, नभ भू में भरकर
प्रणय का नाद, नील मुक्ति में समाधिस्थ होने
तू आज छोड़ चला कुसुमों की छाया

संध्या का नील सरोरुह, जो पराग बन
तेरे जीवन पथ में रहता था, बिखरा
तण तरुएँ, जिन्हें सुनाया करता था तू
अपने विदीर्ण हृदय की दुखभरी कथा
सभी पूछ रहे तुझसे, सरिता के चिकने
उपलों-सी रंगीन, मनोहारी इच्छाओं से
कब तेरे मन हृदय का कोमल रिश्ता टूटा
किसने किया तेरे हृदय मुकुल की स्पष्ट उपेक्षा
जो तू आज छोड़ चला कुसुमों की छाया

ढूँढ़ती है तुझको श्रद्धा सूनी, जिसकी साँस से
मिलाया करता था, तू अपना कंठ कर दूनी
कहता था क्यों नहीं मनुज जीवन के सूखे तरु पर
भी आकाश बेलि की तरह, मनोवत्तियाँ सभी
प्रणय रुधिर से रंजित होकर रहतीं, हरी-भरी
क्यों यह प्राण दीपक, जीवन समाधि के खंडहर पर
अशांत जलता, अब बुझा, तब बुझा दीखता घड़ी-घड़ी

परदेशी, सच-सच बता, कौन है वहाँ तेरा
किसे तू छोड़ आया है, उस महाशून्य के
अंतर्गह के अद्वैत भवन में अकेला
जिसके लिए यह श्याम कर्म लोक तेरी
आँखों को जीवनपर्यंत दीखता रहा धुँधला
जिसके लिए तू ठुकरा कर जा रहा, भुवन में
खिले शत-पत्र कमल की शीतलता

तू नहीं जानता, तुझे नहीं पता, अखिल विश्व के
कोलाहल से दूर, सुदूर निभत निर्जन में
रूप, रंग, गंध से भरा दीख रहा, कोकनाद
वहाँ केवल शून्य का उत्स है, नील सिंधु का
गर्जन है और है महाकाल के साँस की निस्सीमता
जो खोल कोमल कलियों का अस्फुट उर द्वार
अपने हृदय के वाड़व ज्वलन को भरता
सष्टि भयमय मौन चुपचाप खड़ी देखती रहती
वहाँ प्रकति और पुतलों में कोई अंतर नहीं रहता

इसलिए छोड़ सोचना, मही और नभ दोनों
अलग-अलग हैं, तू जिसे सोच रहा अम्बर
वह मही की परिछाहीं है, दोनों में कोई भेद नहीं है
वहाँ कोई कंचन सरोवर नहीं है, जिसकी धूमैली सुबास
हवा संग उठकर बादलों में ताजगी भरता
देवदारु के प्रलंब भुज से मदहोश होकर उलझा बहता
यहीं है नाग केसरों की क्यारी, यहीं रहती शांति प्यारी
इसलिए उस तम घन में लौटकर अब तू मत जा

प्रेम-प्रेम क्यों पुकार रहा रे

प्रेम-प्रेम क्यों पुकार रहा रे, प्रेमी
प्रेम-प्यार की खतम हो गई दौड़
अभी तो चल रहा है घणा, द्वेष
कपट, छल, हिंसा, स्पर्धा की होड़

कौन कितना, मुट्ठी में अणु-संघार लिये
कर सकता है विनाश का वज्र घोष
कौन कितना दिखा सकता अपना रोष
जिससे सिहर उठे, धरती का कण-कण
हिल उठे अंतहीन अम्बर का ओर-छोर

कहते हैं वन फूलों की घाटी को बिखरा देंगे
शोभा पल्लवों को रख देंगे हम तोड़-मरोड़
लूटेंगे रस के मटकों से भरे फूलों को
जो लटक रहे हैं चेतन भुवनों से लगकर
जिससे सुरभित, सुगंधित है यह खगोल

हमें नहीं चाहिए, आदर्शों का बिचुंबी शिखर
जो मानव अंतर को रखता चतुर्दिक घेरकर
प्राणलता को छूने नहीं देता, मनवांछित नभ
रखता पाप-पुण्य की लौह बेड़ी से जकड़कर
कहता धर्म, रीति-नीति और प्रेम-प्यार-प्रीति
ये सभी हैं, जग-जीवन की मुक्त योजना का है
स्वर्णपाश, रहो सदैव इसके संग बँधकर

सभी देतीं समान पीड़ा, कभी नहीं होतीं ये सुखकर
मोह-प्यार-प्रेम, ये सभी हैं विचारों के बंधन
मुक्ति पाना है तो पहले इन बेड़ियों को काटना होगा
इनसे बँधकर जीना बड़ा ही होता दुष्कर
जब हम सभी जानते, बेड़ी स्वर्ण की हो या लौह की
माया कहकर क्यों मषा मेटते हो, स्तित्व प्रकति का
देखो नदियाँ, वक्ष, सागर, पहाड़; इस शून्य मंच पर
कैसे जीवित साकार खड़े हैं एक-दूजे से दूर हटकर

पाप, पुण्य, दोनों ही बाधक हैं, शांति समता के
दोनों से निश्चिंत बहने दो, चेतना के अभंग को
करने दो उसे अपना कत्य, स्वयं में लिप्त होके
ये विधि निषेध नहीं, नियम हैं अर्जन-वर्जन के

लौटा दो वह बचपन मेरा

ओ चित्रकार! एक करुणा करो मुझ पर
मेरा भोला बचपन, लौटा दो मुझको
अपनी स्मति के तूलि से इन
कोरे कागज के पन्नों पर, रेखांकित कर

वर्षों बीत गए, कुछ याद नहीं अब मुझको
कैसे चलता था मैं, पेट के बल सरक-सरककर
कैसे आँगन में गूँजती थी किलकारी मेरी
कैसे बैठता था मैं, अपने दोनों टाँगों को फैलाकर
कैसे रोता था मैं, माँ का आँचल पकड़कर
कैसे सुलाती थी माँ, गोद में उठाकर, थपकी देकर

कब यौवन के मादक हाथों ने आकर
छीन लिया मेरे बचपन के तुतलेपन को
मेरे बालपन की कोमल कलि का मुख खोलकर
कब गुम हो गई, कहाँ किस अंधकार में
विलीन हो गई माँ की वह लोरी, जिसे
सुनाती थी वह मुझे, रातों को जाग-जागकर

कहाँ छुप गया, वह चंचल, सुंदर मुखड़ा मेरा
जिस पर खेलती थी, नव-नव कुसुमों की लाली
प्रेम प्रणत हो, कौतूहलता करती थी क्रीड़ा
संध्या के झुरमुट में, आँगन के मुंडेर पर से
गला फाड़-फाड़कर बुलाता था, मुझको
कौवा, कबूतर, मैना, कोकिला और गोरैया
कहता था देखो! तुम्हारे चपल, पावन पदाचार से
आह्लादित होकर नभ-नील में उतरने लगी
संध्या सुंदरी, मुग्ध स्निग्ध उल्लास
जल बन लगा, हिलकोरे लेने
अब तुम जाकर, सो जा मेरे भैया

मैं भी बुलाता था उसको, दोनों हाथ हिला
-हिलाकर, झुनझुने को बजा-बजाकर
नीले, पीले, लाल खिलौने को दिखलाकर
वह भी निभाता था अपनी सहज
सरल शिष्टता, पंख को फड़का-फड़काकर

माटी सना, धूल भरा, नग्न देह मेरा
मोहता था सबके नयन, मन को
माँ कहती थी, यही तो है मेरे हृदय का
वह सिंधु तट, जिसे खोज रही थी मेरी मन-विभा
आकाश का चाँद देखकर कहते थे पिता
ऊपर का चाँद तो सबका है, यह चाँद है सिर्फ मेरा

ओ चित्रकार! एक और करुणा करो मुझपर
मेरे यौवन के अंचल में, लाकर थिरकते पग
सँभलते नहीं सँभाल, ऐसे बालपन को बिठला दो
उसकी सुधा-स्मिति में, माँ का वह रूप भी दिखा दो
जिसे देखे वर्षों बीत गये, जिसके लिए शिशिर-सा
झड़ता मेरा नयन, जीवन मेरा अधूरा लगता

विधवा

मंदिर की दीपशिखा-सी, भाव लीन
टूटे तरु की छूटी, लता सी दीन
कौन है यह देवी, मिले प्रिय का पदचिह्न
बाँध रही रजकण को चुन

देह कष्णलता -सी है कुम्हलाई
साँसों में जीवन की शून्यता है समाई
जमाने से खुद को रखती बचा-बचाकर
भिक्षुणी-सी फिरती मारी-मारी

नयनों के कोने में, दीनता के दोने में
है स्मति का भरा हीरक पानी
कहती मैं भी हूँ उसी सष्टि की
जिसने इस जग को बनाया, और भरा
उसमें प्रेम-प्यार, स्वर्णिम जवानी

मगर इस जग में मेरे होने का अर्थ नहीं
मेरा जनम व्यर्थ, मेरी कोई जीवन साध नहीं
मुझे गगन में भी छूता धरती का दाह
मिट्टी पर चलने को मिलती नहीं राह
मैं नियति वंचिता, आश्रय रहिता
पदमर्दिता, पछतावे की हूँ कोई परिछाहीं

नियति से लिखवा लाई हूँ मैं
अपने भाग्य में अंतहीन पीड़ा
मैं नक्षत्र लोक से टूटी, विश्व के
शतदल में ढुलकी, ओस की बूँद हूँ कोई

मैं जीवन-अनुभूति की तुला पर
अपने अरमानों को तौल, मूक अबोध
व्यथा से, पागलपन को लेती हूँ मोल
मैं निर्घोष घटाओं में तपड़ने वाली
वेदना की मतवाली, चपला हूँ कोई

मेरे मानस के भींगे पट पर, जितनी भी
पीड़ाएँ हैं, सब के सब सुमन से खिलते रहे
भव बंधन के दोनों कूल हरे-भरे रहे
सींचती हूँ मैं अपने अश्रु वर्षण से, जीवन
नद में, भरकर रखती हूँ आँखों का पानी

युग अंधर में, पतझड़ की पत्तियों-सी
कैसे छितराईं मेरी अभिलाषाएँ सारी
अज्ञात अंधकार को सुनाती हूँ कहानी
नभ की चाह रखती हूँ, धूलि के कण में
बिंदु में रखती हूँ दुख का अथाह जलधि
यही है मेरा लघु जीवन, यही है मेरी निशानी

अब कैसी आशा समर विजय की

बंद होने लगी जब भाषा उर की
अब कैसी आशा समर विजय की
यह लोक न शोक हरेगा तुम्हारा
अब तो लाग-लगा, उससे मन की

जो मौन गगन को भेदकर
नीरव गिरि से निःसत होकर
निर्झर बन धरा पर आता
तप्त धरती की दग्ध साँस से
आह न निकले, कर उस पर मधु-
रस की वर्षा छाया-दल में जाकर
तरु-लताओं संग लिपटा, सोया रहता

सिकता समीर सलिल सदा
एक स्नेहपाश में बँधा रहे
जग में कंकाल जाल फैलाता
फिर पल्लव-पल्लव में नवल रुधिर
भरकर प्राणों को मुखरित करता

जलाशयों में जाकर कमल दल को
लघु लहरों के चल पलनों पर झुलाता
फिर जड़ को पंक से छुड़ाकर
दूर कहीं बहा ले चला जाता

जिसके लिए रत्न-विभूषित अम्बर
किरणों का स्वर्णिम चादर बुनता
सरिता कलरव करती, कुसुम हँसता
जिस पथ से आती उद्‌गम की हिल्लोर
लगा लाग मन की, वही तो है चितचोर

जिसके लिए गिरि-गिरि से उठकर तरुवर
नीरव नभ की ओर, टकटकी लगाये जीता
तरुवासी कोकिल पंचम स्वर में गाता
कुसुम क्यारी में जाकर, तमाल सोया रहता
बाँध उस तट से अपनी जीवन की नौका
क्योंकि छानेवाली है, भावी में घनघोर घटा

ऐसे भी झंझा प्रवाह से निकला यह जीवन
इसमें नहीं सम्मिलित, चैन का एक भी कण
रहता केवल अनिल, अनल, क्षितिज
नीर और विक्षुब्ध समीर भरा, जो
हर पल मनुज को भयभीत बनाये रखता
ओस कण में दिखलाकर, रजनी का क्रंदन
छायामय सुषमा में दिखलाकर विह्‌वलता
कैसे घूम रही नियति की प्रेरणा, डराये रखता

जिंदगी तू बैठ यहीं

जिंदगी तू बैठ यहीं, तेरा भार बड़ा कठिन
तू भू पर उतरी, लेकर मुझको जिस दिन
उसके पहले की धरी, लौह जंजीर मिली
तुझ संग मेरा कोई द्वंद्व नहीं, परिचय नहीं
फिर भी धरा की संचित, पीर मिली

तेरे डर की तेज हवाओं के भय से
हृदय-गह का स्वामी, प्राण-पाखी
झंझा में भी नयन खिड़की खोल सोता
सोये में भी रहता, उड़ने का अभ्यासी

तू दीन-हीन पीड़ित निबल, जीवन का संबल
तू स्वर्ण शुद्ध हृदय प्रियतम का मनोबल
तेरे हाथों खुद को बेच दिया, बिना मूल्य
फिर भी करती है तू, उसके संग छल
सष्टि के जल, वायु, अग्नि, नभ, थल में रहकर
भी, जग कानन में मचाती उथल-पुथल

जिंदगी तू जीवन के संग बैठ तो एक पल
सुन अंतर के नीरव झंकारों का कोलाहल
पूछती हर घड़ी प्यास, हर घड़ी जलन
मिट्‌टी में इतनी आग आती कहाँ से
जो मंजरित आम्र वन की छाया में रहकर भी
कोयल की कूक में रहता ताप घुला, स्वर का
अवलंब लेकर आग निकलती सागर जल से

तेरा यह तर्क निराधार है, तारों में होता जलन
संध्या में रहता विषाद, मेघ आँसू का पारावार है
जिससे तप्त, पीड़ित रहता धरती का आनन
धरा धूलि से, लिपटा रहता दुख ज्वाल है
दिशाओं में किरणों की धूम धौंकता
गगन के रंध्र-रंध्र में निस्सीमता का धमाल है

जिंदगी तू चाहे तो, कश पीले तन पर भी
पल्लवित तरुण, लावण्य लोक बसा सकती है
शीतल हरीतिमा के नव ज्वाल को फैलाकर
आह्लाद, प्रेम यौवन का स्वर्ग बना सकती है
तू तो स्वयं सष्टि का सौंदर्य, व्योम की वष्टि है
तू चाहे तो वीरानों में भी, निशि भोर से चुनकर
सुमनों के दल को नवल कलिका-सी खिला सकती है

तू छोड़ यह कहना, कोयल की कूक
सूखे तरु की डाली पर सुनवा नहीं सकती
मुर्दों को छेड़ जगा नहीं सकती, जीवन को
देकर मौत का लालच, उसे छीन नहीं सकती
अरी! तेरा स्पर्श पाकर, किरणें भी निनादित हो उठतीं
तेरे बाहुओं के लय में, केवल गात्र ही नहीं बंदी
तेरे वक्ष तल्प पर व्यग्र प्राण भी विश्राम करता
योगी अनंत चिन्मय को रूपायित कर
जीवन में रसस्विनी की धारा भरने वाली
जिंदगी तू बैठ यहीं, तेरा भार बड़ा कठिन

धूल-धुँध में अग्नि बीज बो रहा

विनत मुकुल-सा हृदय वाला भू-नर
अपने मनोनभ को दीपित करने, आज
वस्तु भोग के पीछे इतना पागल हो गया
धूल-धुँध में अग्नि बीज बो रहा
ज्यों मत्यु विचरती धरा पर निर्भय होकर
त्यों प्रलयकारी शस्त्रों से सुसज्जित होकर घूम रहा

कहता, मैं मानव प्रतिनिधि, भावी भारत का निर्माता
मैं निज, अपूर्व चेतना की शिखा से आलोकित कर
धरा मानव का स्वर्गिक, रूपांतर करना चाहता
इसके लिए मुझे असिधारा के पथ पर चलना होगा
तोड़-मरोड़कर शोभा के पल्लव की डाली को
प्रतीक्षा में जो खड़ा है, नव मानव धरा पर उतरने
उसके लिए समतल पथ प्रशस्त करना होगा

इसके लिए मनुज देह के मांसल रज से
धरती की मिट्टी का नव निर्माण करना होगा
जब तक उर्वरक मस्तिष्क का चेतन-वैभव
धरा-धूलि संग मिलकर एकाकार नहीं होगा
तब तक सर्वोज्वल चेतना संभव नहीं, प्राणों के
निकट रहकर भी अधरों का राग म्लान रहेगा

वत में घूम रहा, मानव की
समतल व्यापी दष्टि होने के कारण
मनोजग से बाहर, ऊपर देख नहीं पाता
मुक्ति कहाँ विचरती, चिंतन कर नहीं पाता
ह्रदय क्रंदन जाकर डूबता कहाँ, जीवित
जग में इतनी उत्पीड़न आती कहाँ से
चिर उल्लास से दर्शन होगा कहाँ
सोच, जीवन को बता नहीं पाता

ऐसे भी अस्थि-पंजर का यह जग घर
यहाँ जीवन क्षण-धूलि ठहरती नहीं पल भर
देवों का अतुल ऐश्वर्य-शोभा-सुंदरता
ज्योति-प्रीति, आनंद अलौकिक, स्वर्ग लोक का
जो वाहित होकर आ रहा निरंतर धरा की ओर
जिसके त्रस्त जाल में घिरता-तिरता मानव के
भावोद्वेलित वक्ष को तण कक्ष के द्वार पर
खड़ा कर अशांत जीने को बाध्य करता

इसलिए मैं खोद-खोदकर देख रहा हूँ
कहाँ दबी है वह आग, जो चिमनी से उठे
फिर से आग और जीवन कंदर्प को कर दे खाक
ऐसे भी निखिल धरा की शोषण पीड़ा
से पोषित, मनुज अंगों की मांसल शोभा पर
आधि-व्याधि, गीध से टूटते बहु रोग, जो तन से
तो बाँधे रखता मन को, प्राण से नाता देता तोड़

चित्रित तुम, मैं रेखा-क्रम

विरह ज्वाला के साँचे में ढलने
सूने गह -आँगन के कोने में रोने
संध्या की मलिन सेज पर
पहनाकर वेदना का जलद हार
तुम कहाँ गये, मेरे प्राणाधार

है कसम तुमको, नभ में देखो
चतुर्दिक तम तोम घटा है घिरी
ऐसे में कैसे समायेगी अब वहाँ
तुम्हारी छाया छवि महिमा वाली

तुम लाँघ क्षितिज की अंतिम द्वार
उतर आओ धरा पर फिर एक बार
जान जाओ मेरे दिल का कैसा है हाल
देख जाओ कैसे बीत रहा जीवन काल

खड़ी हूँ कर में लेकर, स्मतियों की अंजलि
झूम तुम्हारी मेघमाला में, चपला बन मिटूँगी
चित्रित कर जग स्पंदन में, अपनी अमिट प्यास
कलियों को करूँगी सुरभित, लुटा अपना अवदात
दूर्वा के कंपन से, मिट न जाये तुम्हारा चरण चाप
रखती हूँ मैं गिन-गिन कर पाँव, होती है जब रात

बाती-सी तिल-तिलकर मिटती हूँ
जल-जलकर अपनी ही ज्वाला में
ढाल, हलाहल पीती हूँ मैं
अपनी साधों से निर्मित प्याला में
मेरे प्रति, रोमों से झड़ता है
नर्झर-सा, झर-झर कर ज्वाला की आग
आसक्ति से विरक्ति तब होती है मुझको जब
मोतियों का हार पहनाने आती सुख की रात

गर्जन के शंखों से, झंझा के झोकों को बुलाती हूँ
खोलने मैं, अपने हृदय का रुद्ध द्वार
लहरों-सी, पवन के स्तर-स्तर से
कोटि-कोटि पीड़ाएँ, विविध पंचशर के
वाणों से, करतीं मुझ पर वार
भाग्य-ज्योतिषी कहता, तुम्हारी हस्त-रेखाएँ
बता रहीं, और बहुत कुछ हैं विपदाएँ बाकी
उससे भी करना है तुमको नयन चार

तुम चित्रित, मैं हूँ रेखा-क्रम
तुम असीम, मैं सीमा-भ्रम
तुम्हीं बताओ, कैसे निभाऊँ लोकाचार
तुम छोड़कर, प्रतिष्ठापुर का स्वर्ण द्वार
फिर से उतर आओ धरा पर एक बार

नव वसंत पतझड़ बन आता
मेरे आँगन बीच करता संचार
मेरे अलस पलकों से पता मिटाने
स्वप्न खग छोड़ दिया नयन बसेरा
अब रहता यहाँ केवल एकांत अंधकार

तुम आभा का सागर बन, उतर आओ
मेरे तषित नयनों में नीरव प्रीति को
विकसित कर, चिर प्रतीति की मधुर
मुक्ति का अनुभव करा दो
भर दो मेरे जीवन में, अपने श्वासों की सुबास
तुम कहाँ गये मेरे प्राणाधार

जिसके लिए लगाती हूँ अश्रु की हाट

जिसकी स्मति की छाया से गर्वित हो
गले मिल, करती हूँ मैं मर्म प्रीति की बात
जो है मेरी साँसों का उद्‌गम, जिसके
लिए शून्य पड़ा है, मेरा हृदय आकाश
जिसकी चाह, वेदना बन, मेरी धमनियों में
करती संचार, कहाँ है वह सरल छवि की
छटावाली मेरी जीवन नौका का खेवनहार

जिसके विरह ज्वाल में, घुल-घुलकर
मिटता जा रहा मेरा जीवन साम्राज्य
जो जीवन सिंधु है मेरा, जिसके लिए
मेरी आँखें लगातीं नित आँसुओं की हाट
जिसके अभिनंदन पथ पर अपनी
व्याकुलता का पुष्प बिछाकर
विजयिनी सी खड़ी, करती हूँ मैं इंतजार

जिसके लिए अपने जीवन के दुर्गम पथ को
निज अश्रु जल से सीच, रखती हूँ सजल, शीतल
जिसकी एकांत इच्छाओं के कम्पन से, मैं
सपने में भी उठ बैठती हूँ, नींद से जाग
जो निशीथ की नीरवता में आता मुझसे मिलने
जिसका मेरे निमिषों से भी नीरव है पदचाप
जिसके लिए मैं घायल मन सोती हूँ
ज्यों घटाएँ बीच रहती सितारों की प्यास

आज दुनिया पूछती उसका नाम करना चाहती
उससे आलाप, अब तुम ही बताओ, क्या बताऊँ
वह अंतर के कूलहीन तम से दमक
आँखों से अश्रु बन झड़ता है
शूलों के पथ पर भी पकड़कर चलता है मेरा हाथ
वह छाया बन मुझमें लय है
मैं हर पल रहती हूँ, काया बन उसके साथ

(सहेली रेखा की तरफ से पति की मत्यु के बाद)

तीनों काल मुझमें है निहित

प्रभु! मैं तो जानता, यह रूप जगत, तुम्हारी
ही छाया है, तुम ही हो, इस जगत के पिता
तुमने ही इस लोक को बनाया, सजाया
नित्य विलासी, सुरभित रहे दिगंत
तुमने ही मधु से पूर्ण बनाया वसंत

धरती के रोम-रोम में सुंदरता भरी रहे
तुमने ही कोकिला की कूक, मग गुंजार
सुमनों में सुहास, जल में लहरों को भरा
जगती के सरस, साकार रूप चिंतन में
मनुज के अंतर को नीरवता स्वरूप प्रकाश
मिलता रहे, तुमने ही रत्नों से विभूषित नभ को
स्वर्ण किरणों की झालड़ से बुना

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता, सब तुम्हारा ही प्रतिरूप है
यह लोक सुखी रहे, ले आश्रय मनुज की छाया में
तुमने ही सभी जीवों में श्रेष्ठ बुद्धिमान मनुज को बनाया
विडंबना है कि आज एक वर्ग स्वयं को मनुज विप्र बताकर
कहता, इस लोक जीवन का प्रतिनिधि मैं हूँ, स्थूल जगत के
मूर्त और सूक्ष्म प्रकाश की सप्तरंग छाया से मैं बना हूँ
मैं मर्त्य अमर हूँ, मुझमें ही शत स्वर्ण युग हैं समाहित
भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों काल मुझमें हैं निहित
मैंने ही पत्रों के मर्मर में, देवताओं की वीणा के
मधुर स्वर को भरा है, मुझसे ही शिलाए हैँ पल्लवित

यह सूरज जो नित, धरा के गर्भ गुह्य से निकलता
जानते हो, यह स्वर्ण महल को छोड़कर क्यों यहाँ आता
यह लोक विधायक नहीं, लोक विघातक है
यह नित रजनी को अपनी प्रीति स्रावित बाँहों में भरकर
कितने ही अग्नि बीज को, धरा पर बिखराता
जिससे तप, दग्ध रहती धरा, पंक जीवन का
कोई भी हिस्सा, हरा-भरा नहीं हो पाता

आलोकित करना चाहते हो अगर
अपने घोर नैराश्य तिमिर को
पहले मनुज सत्य की अमर मूर्ति
युग विप्र, भविष्य द्रष्टा का कहा मानो
जो देख रहा है कैसे मूक धरा के
अतल गर्भ से, एक-एक कर
शैल-सा अग्नि-स्तंभ निकल रहा
कैसे बारी-बारी से जन जीवन को
उस अग्नि स्तंभ पर चढ़ाकर बाहर फेंक रहा

मैं ही नहीं, विश्व देख रहा, महाशून्य की नीरवता में
नित नव-नव ग्रह, कैसे एक-एक कर जनम ले रहा
क्या यह सब मरु की काँपती निर्जलता में
प्राणों के मर्मर, हरियाली को भरने उठ रहा
नहीं यह सभी महाशून्य के वहद पंख-सा
रिक्त अग्नि-पिंड है, जो अपने उभरे मोटे होठों
में लालसा को दबाये, धरा को ग्रसित करने आ रहा

यह जो प्रकति है, नित आंदोलन संग्राम, धरा पर छेड़ती है
कभी वारि को वाष्प, कभी वाष्प को वारि बनाती है
जल-थल, नभचर के विकास क्रम को, जब यह सुलझा न सकी
तब इस जग का भार, चिर स्वतंत्र महामत्यु को सौंप दी
और कही, मत्यु प्राणी जीवन का भष्म शेष नहीं है
बल्कि यह नव जीवन की शुरुआत है, यह तो
निशा मुख की, मनोहर सुधामय मुस्कान है
यहीं से जीवन शुरू होता, जीवन का यही तो आख्यान है

जबकि हाड़-रक्त-मांस से बना यह मनुज विप्र
विविध दुर्बलताओं से स्वयं ही रहता पीड़ित
कभी रोग नोचता श्वांग बनकर, कभी भयभीत
कर रखता तिमिर, तब ईश्वर का करता आह्वान
आत्मा गोपन होकर करती चिंतन, कहती
सूख गए सर, सरित, क्षार निस्सीम है जलधि जल
इस पावक को शमित करो प्रभु, हृदय लपट को बुझाओ
तुम हो परे, तुम क्षणभंगुर में भी नित्य अमर

तुम परित्यक्तों के जीवन सहचर
तुम्हारे आगे, ब्राह्मण, योगी, भोगी, राजा
रंक, फकीर सभी दीन, सभी दुर्बल
तुम भटके को दिखाते पथ
तुम बाधा विघ्नों में हो बल
तुम प्राण रूप में हो सत्य
तुम कुत्सित रूप में भी लगते सुंदर
तुम पंकिल जीवन का पंकज
शेष शून्य जग का आडम्बर

वह कौन है

कौन है वह, जो अंतर पथ से आकर
हर क्षण मुझमें कसक बन रहता
प्रीति के कंपित तारों से, मेरे प्राणों के
उर व्यथा को मथित कर, अलकों से
अश्रु बन ढुल-ढुलकर बह जाता

किसके लिए कश ढाँचे में, जकड़ा प्राण मेरा
जीवन की चिता बनाकर, सुलगाकर ज्वाला
जग के इस घोर तिमिर में, फैलाना चाहता उजाला
चिंता करती हूँ मैं जितनी, उतनी ही मेरे
जीवन अनंत में, दुख की रेखाएँ बनतीं
स्मर-शर बेध, बढ़ाता मन की पीड़ा

किसकी तषा से मेरा शीतल प्राण, धधक उठता
किसकी नीरव वाणी, छिप-छिपकर मेरी हृदय-
शिशुता को आवाज देकर बुलाती, कहती
मेरा हृदय, मनोभव का आकार खोकर भी
तुम्हारी अलकों की डोरी से उलझा रहता

सूर्य-चन्द्र की आभा में होकर लय
तुम्हारी प्राण इन्द्रियों से मिलने आता
धीर समीर, परस से पुलकित, विकल श्रांत
मन को तुम्हारे पास रखकर, उर्ध्व गगन
में जा, रजनी में, तारे बन मुसकाता

मगर मैं कैसे बताऊँ उसे, प्राची के अरुण मुकुर में
देखती हूँ जब सुंदर मुख प्रतिबिम्ब तुम्हारा
जीवन का मधु प्याला, फिर से छलक उठता
निशीथ की नग्न वेदना, दिन की दम्य दुराशा
हिला द्रुम-पुंजों का हृदय, मुझे जीने नहीं देता

परित्यक्ता वैदेही-सी भटकती हूँ मैं यहाँ
स्मति, सन्नाटे से जब भर जाती, तब
खोज धरा में स्थान, सो जाती हूँ मैं यहाँ
कहते हैं, जिस पंचतंत्र से बना है यह देह मंदिर
उसी से है देव मंदिर भी यहाँ बना
पूछती हूँ उस देवता से, जो मेरा सब कुछ था
जिसे मैंने अपना सब कुछ दान कर दिया
वह आज मेरा सुख चुराकर क्यों भागा
क्यों उसके लिए जीवन मेरा सिसकी भरता
साँसों का दोहरा सीकल, पग को चलने से रोकता

उस पर तड़पन कहती, तुममें और
कितना मधुरस है बाकी जो
अंतःस्थल में छिपी तसवीर को
प्रतिपल अश्रु मुक्ता की माला पहनाती
प्राण तुम्हारा, अगरु दीप-सा जलता रहता

सोचती हूँ, क्या कहूँ जिसके लिए
मेरा शरीर प्राणहीन, जीवन मत रहता
वह और कोई नहीं, मेरी ही काया का है साया
जो दूर रहकर भी, मेरे प्राणों के करीब रहता

प्राणाकांक्षा

छोड़ परदेश पिया, आ जाओ अपने देश
सिकुड़ा-सिकुड़ा दिन रहता, तप पानी में बैठा
गई साँस, लौटकर फिर से नहीं आती
अब तुम्हीं सँभालो इसे आकर, ज्यों सँभालते गेह
अर्पित है तुमको, सूख चुका लता-सी मेरा यह देह

दूर क्षितिज में देखो, तरुमाला के ऊपर
विहंगों की काली पाँती-सी, उड़ने लगी
सावन की काली घटाएँ, घनघोर
नाच-नाचकर आँगन में, गाने लगे केका-
केकी, हिलने लगा नभ का ओर-छोर

ऊँचे तरुओं के पत्रों के झुरमुट से गिरता
सावन की बूँदों की रिमझिम का स्वर
भीतर अंतर को कँपाने लगा, छू-छूकर
हृदय के मत रजकण में, चेतना भरने लगा
गमक कर केतकी की गंध, फैल गई चारों ओर
नव मुकुलित, अंगों के उपवन में, पलकों की
मदु पंखुड़ियों पर, प्राण पिक लेने लगा हिलोर
पूछने लगा, जिसके लिए तरसूँ मैं नित
जिसके लिए नाच-नाचकर गाता
मेरा मन मोर, कहाँ गया वह चितचोर

लालसा भरे यौवन के दिन, पतझड़ में सूख चले
मेरी अपूर्णता को अब तक न तुम समझ सके
पुरुषत्व मोह में, तुम इस तरह रहे मशगूल
कुछ अधिकार होता, नर संतलत पर नारी का भी
झलमल स्वप्न रहता भले ही, कर स्पर्श से दूर
छूना चाहती वह भी, इसे तुम गये भूल

यति-सा जागकर आँखों में रात काटती हूँ
सोचती, विरह-प्रेम से उपजे, इस मादक
तरंग को समेटकर धरूँ तो मैं कहाँ धरूँ
है कौन सा प्राण सिंधु का, वह अदश्य किनारा
जिसे हृदय फोड़कर, छूना चाहती, रक्त की धारा
क्यों सदा से प्रेम, हृदय की उलझन बनती आई
जो चीज अलभ्य होती, उसी को चाहती आई
पड़ी है लम्बी-सी अवधि, जीवन पथ में
उस पार क्या है, व्यग्र मन को कैसे समझाऊँ

तुम भी जानते हो, तुमको भी है मालूम
जब ज्वारों पर ज्वारों का आता है आवेग
तब कंठ चुप रहता है, बोलता है दर्द
आँखें खुली रहकर भी रहती हैं खामोश
ऐसे भी विरह अग्नि में तपा चुके हो तुम
पहले ही बहुत, अब न करना कोई आदेश
छोड़ परदेश पिया, आ जाओ अपने देश

मन तू हौले-हौले डोल

मन तू जरा हौले-हौले डोल
आज निशीथ की नीरवता में
घर आने वाला है मेरा चितचोर
देखो! स्वागत में सागर, पहाड़
फूल, गलियाँ-कलियाँ, सभी हैं साँसें थामे
तू क्यों मचा रही है इतनी शोर
मन तू जरा हौले-हौले डोल

जिसके लिए मेरे हृदय में, घिरी रहती मेघमाला
जलमयी रहती आँखें मेरी, फिर भी न होता कंठ हरा
जो बंद आँखों की खिड़की से, मुझे अंतर व्योम में
हर क्षण दिखलाई पड़ता, जो है मेरा जीवनधन
जिसके लिए जीवन, जिंदगी संग रहता जंग
जिसके बिछोह में, व्यथित प्राण मेरा, धोता
रहता, अमर काल का पंथ अनंत
जो है मेरा सिरमौर, आने वाला है वह चितचोर
मन मत आँक तू मेरे आँसुओं का मोल
लघु प्राणों के कोने में, रहकर तू हौले-हौले डोल

जिसके बिना मत्यु क्या है, नहीं हमें मालूम
फिर भी मन लेता, बार-बार उसी को चुन
जिसके आगे जानकर बनती थी मैं अमोल
बढ़ा देख कौतूहल उसका, जाती थी मैं तोल
जिसकी सुधि कसक-कसक कर हृदय को देती तोड़
मन मत अंकित कर उसे तुम रेखा-सी सिकता में
वह तो मेरे निश्वासों के रोदन में, इच्छाओं
के चुम्बन में रहता दिन-रात, शाम-भोर
मन तू जरा हौले-हौले डोल

वह मेरे मन-मंदिर का देवता है
मैं, उस मंदिर की पुजारिन हूँ
ले-लेकर निज अश्रु-जल, मंदिर
प्रांगण को नित लीपा करती हूँ
पीड़ा सुरभित चंदन-सी वह मेरे, प्राणों संग
लिपटा रहता है, निज साधों से निर्मित कर
मैं अपने प्रिय का रूप सलोना, नयन पथ से
सपनों में उससे मिल आलिंगन भरती हूँ
मगर तू क्यों किसी के आगमन के शकुन
स्पंदन में है मनाती, रातों को सोती है
आँखें खोल, मन तू जरा हौले-हौले डोल

हम विहग चिर क्षुद्र

हम विहग चिर क्षुद्र, सम्पूर्ण नग्न
हमारे पास न अन्न, वसन, न धन
हमारी उम्र होती बहुत छोटी
जिंदगी के दिन होते, बहुत कम
इधर जनम, खोला नयन
उधर मत्यु, मूँद देती तत्क्षण

फिर भी सष्टि से हमारी कोई शिकायत नहीं
मानव से बैर नहीं, कोई विरक्ति नहीं
न ही कभी, अपनी बदकिस्मती से खीझा मन
बल्कि सहज स्पंदित हो, यह अग जग
आये न कोई बाधा, विघटन, सोच
नभ की निखिल विघ्न-बाधाओं को पारकर
खोल क्षितिज का स्वर्णद्वार, स्वर्गदूतों को अपने
भावों से बाँधकर, हम लाते धरा पर उतार
जिससे यह धरती स्वर्ग-खंड बनी रहे, सुख
से निनादित रहे, विश्व के अक्षयवट की डाल

ज्ञान चेतन से वंचित रहकर भी हम
प्रकति स्फूर्ति से प्रेरित रहता हमारा मन
हम सहज चुन, लघु, तण, खर-पात
शिल्पी-सा तरु की डाली पर बना कर नीड़
करते खग कुल मिलकर, उस पर वास

रक्त-सिक्त धरती के दुःस्वप्न का हो समापन
तषा की आग में पड़कर, न पिघले कोई जन
मानवता में मुकलित हो, धरती का आनन
मरुस्थल में भी निर्झर सा, जीवन ज्योति उतरे
पावन हो बालुका का कण-कण

फुदक-फुदककर, सुप्त जग को, स्वप्निल
गान सुनाकर, हम नींद से जगाते
दिशि-दिशि में कलरव कर, अतप्त
मन में सोल्लास भरते, भवसागर और न हो
दुस्तर, खोल अपना मन पिंजर
मनुज त्वचा सीमा से निकले बाहर
इसका हम अगम प्रयास करते

धरा-अम्बर का प्रीति-प्यार बना रहे
नभ-भू का छोर आपस में जुड़ा रहे
स्वप्न में सोया रहता जब प्रभात
उसके पहले ही हम जाग, गूढ़ संकेतों
में हिलाकर पात, नभ में गान भर देते
जिससे छोड़ निर्जन का निभत निवास
जग नीड़ से आनंद आ बँधे

माँ! आज तुम्हारी पुण्यतिथि है

घर के कोने-कोने को, देह-प्राण-मन के भुवनों को
ममता के ज्योतिर्मय जल से प्लावित करने वाली
जीवन तम के नीचे, उज्ज्वल प्रकाश भरने वाली
माँ! आज तुम्हारी पुण्यतिथि है, दूरागत से आ रही
विचार ध्वनि, बता रही, तुम यहीं कहीं हो खड़ी
मगर माँ! तुम कहाँ हो, तुम्हारे उस
कुसुम कुंज की हमारे घर से है कितनी दूरी

सूख चुके हैं, घर की सुंदरता के स्वर्णघट
हम रोते हैं अश्रु के आँचल से नयन ढँक
आँगन बीच तुलसी पौधा रहता है उदास
विहगों का दल चला वन की ओर, नीड़ को त्याग
कहते, नियति आँगन बीच मना रही तिमिर पर्व
ऐसे में यहाँ पल भर भी ठहरना होगा व्यर्थ

माँ! तुम्हारा शयन-कक्ष, जहाँ से
आती थी ममता की हर वक्त पुकार
लगता नीरवता के गोपन स्वर में मुझसे
कह रहा हो आज, जिसकी स्मति श्वास-
समीर बन रहती हर क्षण तुम्हारे साथ
जो तुम्हारे स्मति तल्प पर, पड़ती दिखाई हर पल
अनगमन, मूक अविगत के संकेतों में
इच्छाओं की कंपन बन, सदैव रहती तुम्हारे साथ

माँ! संस्कति का वह लोकोत्तर भवन, जो
बना है तुम्हारी अक्षय स्मति की नींव पर
आज भी, तुम्हारी कर्म-प्रेरणा का स्फुरित शब्द
गौरव बन लहरा रहा, उसके उच्च शिखर पर

तुमने कहा था, कर्म-निरत जन ही होते देवों से पोषित
इसलिए पाप-कर्मों को छोड़, सत्कर्मों में रत रहो नित
श्रद्धा से कर प्राप्त वर, देवता तुल्य बनो, जिससे
शिशिर शयित जग में, नव स्वप्न हो पल्लवित

ईर्ष्या, द्वेष, घणा की अग्नि में तप रही धरती को
अपने स्नेह सलिल के जल से सींचो
खगवंद, चराचर, सबों पर अमत जल उलीचो
तुम्हारे इस धर्मतंत्र के रोपन से पावन है
आज हमारा घर, मगर हमारे शैशव की
एकमात्र सहचरी, जिसकी छाया में सुख पाती
वेदना वाली सष्टि भी, उससे अलग होकर
हम जीवन जीयें तो कैसे, तुम्हीं सोचो

तुमने सिखाया नाम, रूप, परिधान
मनुज अंग का बाह्य वसन है
इससे आत्मा को बल नहीं मिलता
न ही यह काल दंशन से बचा सकता है
काल रूप यम ही, निखिल विश्व का करते
नियमम, सूरज, चाँद, तारे आलोकवर्ण
यह सब उसी के रूप का एक रूप है
फिर भी भू चर से कहता यह छाया मेरी
नहीं, तुम्हारी है, दुख, मकड़ी के जाल में डाल
जिंदगी को, जीने बाध्य करता जीवन

मगर माँ! हमने तो अपना जीवन तुमको किया है समर्पित
हमार यह जीवन, तुम्हारी ममता और प्यार से हैं पोषित
हमें नहीं चाहिए, तुम्हारे विदेह प्राणों का बंधन
तुम उतर आओ, सशरीर धरा पर, धो लेने दो
अपने नयन नीर से तुम्हारा चरण पावन

चलता हूँ मैं कहाँ अकेला

चलता हूँ मैं कहाँ अकेला
तुम जो मेरे संग चलती हो
जब टूटने लगते सपने सारे
आश का दीपक जलाती हो
चलता हूँ मैं कहाँ अकेला
तुम जो मेरे संग चलती हो

मेरे प्राणों का अवलंबन बन
दिवा-रात्रि मेरे संग होती हो
मेरे नयन लोक के विरह तम में
ज्योति बन जलती रहती हो
चलता हूँ मैं कहाँ अकेला
तुम जो मेरे संग चलती हो

तुम बिन मेरा यह जीवन सूना
सूने में रहता, दुख दूना
लेते ही नाम तुम्हारा, प्रदीप्त
हो उठता, उर का कोना-कोना
तुम नित विविध बंधन में
बंधकर मेरे आँगन रहती हो
चलता हूँ मैं कहाँ अकेला
तुम जो मेरे संग चलती हो

तुम जो मेरे संग न चलती
प्रिये! मेरी पथ-प्रदर्शिका बन
तो जरा भी संशय नहीं कि
मैं कब का टूटकर बिखर गया होता
मिट जाता होकर कण-कण
तुमने खुद को देवों को किया समर्पित
मेरे लिए तो तुम खुद देवी हो
चलता हूँ मैं कहाँ अकेला
तुम जो मेरे संग चलती हो

(मेरे एक मित्र की ओर से, पत्नी की याद में)

गंगा

स्वर्गलोक के सूत्र सदश
भूलोक को उससे मिलाने वाली
चंचल, चमकीली, मणि विभूषिता
शून्य के अनंत पथ से उतरकर
धरा, शतदल पर निर्भीक विचरने वाली
पतित पावनी, वंदनी, दुखहारणी, गंगा

यह जान चिंता से दष्टि धुँधली हो गई
स्मति सन्नाटे से भर गई
सुना जब तुम छोड़ धरा को
फिर से, उस स्वर्गधाम को जा रही
जहाँ से ऋषि भगीरथ ने उतारा था तुमको
कर अनंत विनती, घोर तपस्या

तुम बिन, कर जगत की कल्पना
कंठ रुद्ध हो जाता, रोम-रोम
भय कंपित हो खड़ा हो जाता
आँखों से होने लगती अश्रु बरषा
श्रद्धा कहती, जब तुम न होगी गंगा
तब किसके चरणों में कर अर्पित
तन-मन हम अपना, किसके नाम का
सौगंध खायेंगे हम, कौन भरेगा
छू-छू कर धरा धूलि के कण-कण में चेतना
कौन दग्ध धरा के आनन को, घने तरुओं के
कोमल पत्ते से आवत कर रखेगा ठंढा

कौन हमारे उर में अमर धनवा को बाँधकर
अंतर को निर्मल करेगा, कल-कल, छल-छल
किल्लोल कर, हमारे जीवन जलनिधि में
डोल-डोलकर मलिन मन को करेगा चंगा
तुम्हारी छोटी बहन, सरस्वती भी तो नहीं रही
जो तुम्हारा होकर ढाँढ़स बँधायेगी जग को
नयनों में नीरव स्वर्ग प्रीति को विकसित कर
उर को मधुर मुक्ति का अनुभव कराकर
शत स्नेहोच्छ्वासित तरंगों की बाँहों में
भू को भरकर, युगों की हरेगी जड़ता

कौन सुनायेगा वन विटपों के डाल-डाल को
हिला-हिलाकर, उस नील नीरव का झंकार
जहाँ से अदश्य हाथ बाँटता रहता कनियार
कौन आत्मा की भू पर, बरषाकर अकलुष प्रकाश
ज्ञान, भक्ति, गीता का करेगा शोभन विस्तार

गंगा! सुंदर उदार हृदय तुम्हारा
उसमें इतना परिमित, पूरित स्वार्थ
बात कुछ जँचती नहीं, दीखता नहीं यथार्थ
विश्व मानव का विश्वास जीतकर
मन से मन, छाती से छाती मिलाकर
धरा पर अमत भरा प्याला दिखाकर
फिर से चली जाओगी क्षितिज पार
इस तरह उड़ाओगी हमारी आशा का उपहास
मन मानता नहीं, दिल करता नहीं विश्वास

गंगा क्या तुम नहीं जानती, तुम्हारे जाने के बाद
किरकिरा हो जायेगा, धरा पर जीवन का मेला
फिर न दीखेगी विजन में, भीड़ या रेला, गंगा!
यहीं पुलकित, प्लावित रहो, ललक रही
तुम्हारी पाँव चूमने, तरु तट की छाया

वट वक्ष

गाँव के बाहर, शिव मंदिर के पीछे
गंगा के किनारे, कर्णचौरा के पास
दिशि हरित, शस्यश्री-सा हर्षित
निश्चिंत कभी यहाँ खड़ा रहता था
पत्ते-पत्ते सघन, श्याम द्युति हरियाली
वाला, ऊँचे बरगद का एक पेड़
फुनगी-तरंग पर डोलता था आकाश

संध्या होते ही विहंगकुल के गुंजन से
गूँज उठती थी, उसकी टहनी डाली
कुछ चिर पथहारा खोजता सा, अपने
एकाकी जीवन का स्नेह-सहारा
आता था उसके पास, बैठकर
ऊपर नभ में अपलक नयन से तारों के
बीच ढूँढता था, जीवन नद का खोया किनारा
रेखाओं में उलझी, आकति को
सुलझाने में बिता देता था रात

भीतर-भीतर मत्तिका को फोड़कर वह
पाताल तक बना लिया था, अपनी राह
आकर्षण पूर्ण इंगित छवि उसकी
देख हैरान रहते थे दर्शक, कवि
गढ़ता था कविता, लिखाता था
यौवन की वह कैसी मस्ती
जिसे मौत न ललचा सकी
गंगा, गर्जन कर कहती थी वाह-वाह

इतिहास गवाह है, सन चौंतीस का भूकंप
प्रकति ने मचायी थी कैसी, क्रूर आतंक
दिशा-दिशा में फैल गया था अंधेरा
उमड़ा था प्रलय जल इतना, लगता था
प्रकति का फूट गया हो, पाप का घड़ा
सहस्रों लोग बेघर हुए थे, चरण-चरण
के नीचे महाकाल, सागर बन डोल रहे थे

तब योगीन्द्र सदश, निष्कंप अभय सा
खड़ा रहकर यह बरगद का पेड़, दुःस्वप्नों
से जड़े पलक को, दुःस्मति से पीड़ित उर को
स्वर्गिक शिखरों से ले-लेकर, रजत समीकरण
ताप, शीत, वष्टि के बहु वार से मूर्च्छित तन के
अंतर को प्राणोज्वल कर, लिया था सँभाल
तप संयम की सुंदरता से, जग जीवन में
लाली भरकर, जन-जन को किया निहाल

आज भी बिहार राज्य के मुंगेर जिले में
स्थित है वह पावन-पुण्य स्थल
जहाँ जाकर लोक करते हैं, श्रद्धानत वंदन
कहते हैं, तुम ईश्वर से कम नहीं, तभी तो
तुम्हारी स्तुति कर भरता नहीं मन

वीरगाथा

मन कहता है, मैं वीरगाथा लिखूँ
वंदना करूँ मैं उनकी, जो आजादी की
दढ़ आशा लिए, रवि-सा उगकर
घोर तिमिर के गह्वर में खो गये
जो आज भी शून्य में, बाँधकर सेतु
फहराते हैं, भारत की स्वतंत्रता का केतु
जो कह गये, क्षितिज की लौहकारा को
तोड़कर फिर आऊँगा लौटकर, आये न कभी

जिनकी यादों की कतारें, कश्मीर से कन्याकुमारी तक
हैं लगी हुई, दिल से दीवारों तक है, तस्वीर छपी हुई
सोचती हूँ मैं, पहले उनकी गाथा लिखूँ
रुंड-मुंड के लुंठन में, नत्य करती मीच लिखूँ
जालियाँवाला बाग की धरती पर रुधिर का कीच लिखूँ
आदमियत के लहू से आदमी का स्नान लिखूँ
मन कहता है, मैं वीरगाथा लिखूँ मगर पहले क्या लिखूँ

ऊर्मियाँ बड़ी-छोटी, वारि होता एक समान
जीवित रहकर मन-प्राण-धन से भारत माँ की
आजदी में लगे रहे जो मानव महान, उन्हें लिखूँ
या मत्ति पर खींच, स्वतंत्र भारत की अमर रेख
मिट गये जो भारत के लाल, उनकी गाथा लिखूँ
बसता जो परिधि से आगे, बनकर जीवन का ध्रुवतारा
जो आकार में देवताओं से भी है बड़ा
जिनका विजय-नाद आज भी हवाओं में गूँज रहा
जिनका यश दिनकर, प्रसाद, पंत, पहले ही गा चुके
इन विभूतियों के सम्मुख अब मैं क्या गाऊँ
फिर भी मन कहता मुझसे, मैं वीरगाथा लिखूँ

चरण-चरण पर मिलता है
जिनके बलिदानो का चरणचिह्न
दीखती जिनमें काली कोठरी की
दंड यातना, कोड़ों की मारें
उनकी वीरगाथा लिखूँ, या
जिनकी गौरव ज्योति मलिन
पड़ी है, केवल नाम है बाकी
जो अपने जिगर के टुकड़े का
कटता शीश देख पर्वत-सा अड़े रहे
हिले न इंच भर भी, सूख गया अंतःसलिल
आँखों में आया न एक बूँद भी पानी
उनकी गाथा लिखूँ, मन कहता है
मुझसे, आज मैं वीरगाथा लिखूँ

जो भारत माँ को कठिन घड़ी में देख
दिव्यलोक से धरती पर उतर आया
और कहा, मुझे नहीं कामना यश की
मैं तो आया हूँ तिमिर पुत्र के दस्यु
फ़िरंगियों को इतना समझाने, यह भारत है
यहाँ डँसे अगर किसी एक को सर्प
तो सभी मिलकर रोते हैं, तुम्हारे जैसा नहीं
अपनी रक्षा में, पिता-भाई का सर कटवाते हैं
मुँद-मुँदकर पष्ठ, शील की सीख सिखलाते हैं
त्याग को पाप, पाप को पुण्य कहाते हैं

या मैं उन वीर मनस्वी की गाथा लिखूँ
जिनके आने से ताप शांत होकर
वन हो गया हरित-सुख शीतल
सूखे तरु में फूटे नये कोमल पल्लव
या मात मुख की वेदना, वैधव्य चित्कार लिखूँ
मन कहता है, मैं आज वीरगाथा लिखूँ

या जिनकी गौरवगाथा, उपकूलों में छिपकर
कीर्ति सौरभ बन गमक रही है
ओ हमारे अतीत, भारत के अभिमनी! ऐसे तो
अंकित है, तुम्हारे अभियान की कहानी
याद है जन-जन को, तुम्हारे त्याग की जुबानी
पत्थरों में, दीवारों में, सागर के लहरों पर
फिर भी मन कहता है, मैं वीरगाथा लिखूँ
मगर द्विविधा में हूँ, लिखूँ तो पहले क्या लिखूँ

विजयादशमी

स्वप्नों के शिखर पर, निज छाया के आनन में
निखिल छवि की छवि-सी, जीवन की बूँदों में
मैंने देखा है, श्याम वक्ष, शोभा-सी उज्ज्वल
श्रद्धा-प्रीति से अभिषेकित, संगीत-सा हृदय-
स्पंदनवाला कपालु अयोध्यापति श्रीराम को
विजये! तुमने भी तो देखा है, उस धर्मभीरु
सात्विक, पितभक्त, निश्छल मन करुणानिधान को

जो पिता का वचन निभाने, पहले वनवासी हुए
फिर, विधाता उनके वाम हुये, लंकापति, राक्षस
रावण, धोखे से, जनकनंदिनी को हर ले गये
अर्द्धांगिनी की विछोह-पीड़ा के, प्रणय सिंधु के तल
म
वे इतने विकल हुये, जीवन का सुख-दुख, उनको
देखकर, स्वर संगीतों में होता झंकत, यह भी भूल गये

बाँहों में अम्बुधि-अगाध को थामनेवाले
इंगित कर तूफान को ठहराने वाले
धनुषवार की महिमा क्या है, विनय किसे कहते हैं
भलिभाँति जानते हुए भी, असहाय से वन-वन
भटकने लगे, फूल-पत्ते-झरनों से पूछने लगे
क्या तुमने मेरी प्रिया, सीता को कहीं देखा है
जिसे धर्म-छल से, राक्षस रावण हर ले गया है

विजये! कैसे हुआ, उस पापी का अंत
जिसका रक्षक बल था, राक्षस-सैन्य
और बीच में फैला हुआ था, सिंधु विराट
कैसे कटा अभिमानी, अन्यायी का पंख
कैसे दहला ब्रह्मांड, एकमात्र तुम साक्षी हो

हे मातमूर्ति चिरमंगली, तुम्हारे आने के
चरण-चाप की आवाज को सुनकर
हम हिन्दुओं के हृदय में होता कितना हर्ष
मन के भीतर मन नहीं समाता, जन-मंदिर में
मंगल ध्वनि उठने लगती, घर-घर
में बजने लगता, विजयी शंख

युग-युग की जो ऋद्धियाँ यहाँ उतरी हैं
धर्म सिद्धियाँ जो यहाँ छिपी हुई हैं
दोनों को आह्वान कर, तुम सिखाती हो, यह
समय नहीं सोने का, जागो समय है जगने का
नहीं तो पावक, हिम को फोड़कर मुँह बाये
जो निकल रहा है, वह तुमको निगल जाएगा
चतुर्दिक है धुआँ-धुआँ, घुटन भरी फैली हुई
तुम्हारे आँख मुँद लेने से दीप्ति में नहीं बदलेगा

निज रक्षा में युद्ध पुण्य है या दुष्पाप
व्यर्थ होगा करना इस पर विवाद
मैं तो इतना समझती, जिसका ध्येय
केवल मानवता को करना है ध्वंश

उसे जीवित रखना है सबसे बड़ा पाप
विजये! याद रहेगा तुम्हारा यह संवाद
ऐसे भी सभी जानते, स्नेह मानव का आभूषण है
स्नेह है जीवन का सार, तभी तो फट जाता है
विजयी का भी अंतर, देखकर नरसंहार

कष्णाष्टमी

द्वापर युग, भाद्र मास, कष्णपक्ष अष्टमी को
विधाता की टूटी समाधि, खोले अपना नयन
दानवों की ज्वाला से विकल, जन को
जल रहे गिरि अंचल को, हरित सुख
शीतल करने, गोकुल में, माता देवकी की कोख से
सुंदर श्याम घटा-सी, जनम लिये वसुदेवनंदन

कारागह मंदिर हुआ, सो गये पापी प्रहरीगण
साक्षात जगतपिता को बिठाकर सर पर
बाबा वसुदेव चल पड़े मथुरा, मित्र नंद के घर
यमुना की ओर देख अलौकिक रूप श्याम का
यमुना जी स्वागत में हाथ जोड़कर खड़ी हो गई
तरंग भावुक ह्रदय हार लिये
उछल-उछलकर छूने लगा, प्रभु का चरण

सुनकर, प्रभु के अवतरित होने की खबर
दिशा-दिशा में फैल गयी खुशी की लहर
पल्लवों में लाली फूट पड़ी, सूखे तरु मुस्कुरा उठे
नव कुंज गुहागह, सुंदर ह्रद से भर गया
जीवन घट में पीयूष सलिल बहने लगा
तरुपात थिरकने लगे, तितलियाँ निज पंखों में
भरकर खुशियों का सौरभ उड़ने लगीं
नव छवि, नव रंग, नव मधु से जीवन गया भर

अखिल इच्छाओं का संसार, प्रभु प्रेम से गया भर
शुकि-शुक, हंस-हंसिनी, मगी -मग, अलि -कलि
सुरभि-समीर, किरण-पतंग प्रेममय हो गये
मुकुलों में छिपी सुंदरता, फूलों में निकल हँसने लगी
मेंहदी के उर की लाली, उर पर ही गयी ठहर

अंतर पा प्रीति परस अदश्य
खोजता था जिसे आँखें बंदकर
जिनकी महिमा गाते, थकते नहीं
हिमवत, सिंधु, समय, नदी-नद
जिनकी बाँहों में दिशाओं-सी फैली है कामद
वे बाँधकर पैंजनी पाँवों में, ठुमकी-ठुमकी
चल-चलकर, सबके नयन को सरसाने लगे
धन्य हुई, मथुरा की माटी
गोकुल वंदावन, स्वर्गधाम हुए

हे सारथी! रोको अब इस रथ को

हे सारथी! रोको अब इस रथ को
मना करो दौड़ने से, विश्राम दो अश्व को
देखो! ऊपर घोर प्रलय घन घिर आया
मित्र सन्मित्र सभी भागे जा रहे
प्रिय! पदरज मेघाच्छन्न होता जा रहा
अब तो मानो कहा, सुनो मेरे हृदय क्रंदन को
बंद करो अश्रु, मुक्ता गुंथी इस पलक परदे को

चित मंदिर का प्रहरी बन, पुतलियाँ अब थक चुकीं
कहतीं, पहले सा अब ऋतुपति के घर, कुसुमोत्सव
नहीं होता, न ही मादक मरंद की वष्टि होती
दासी इन्द्रियाँ, लांघकर मन क्षितिज घर चलीं
हिलते हड्डियों का कंकाल, रक्त-मांस को फाड़
बाहर निकलकर, बजा रहा विनाश का साज शंगी
कहता, दीख रहा हरा-भरा जो तन शिराओं का जाल
उसमें लहू नहीं, केवल जल की धाराएँ हैं बहती

इसलिए केवल व्याकुल होकर, शरद-शर्वरी
शिशिर प्रभंजन के वेग से जीवन पथ पर
दौड़ते रहने से, मधुमय अलिपुंज नहीं मिलेगा
जो एक बार मनोमुकुल मुरझ गया आनन में
व्यर्थ होगा उसे सींचना, वह फिर से नहीं खिलेगा
बूँद जो आकाश से टूटकर, धरती पर आ गिरी
वापस नहीं जाती, मेरे लिए क्यों विधान बदलेगा

ऐसे भी झंझा प्रवाह से निकला यह जीवन
इसमें भरा हुआ है, माटी संग स्फुलिंगन
जो लहू को हमेशा तप्त बनाये रखता, जिससे
प्राणी जीवन का कोमल तंतु बढ़ नहीं पाता
द्विधा और व्योम मोह से मनुज को घेरे रखता
में ही मर्त मानव का तुर्य हूँ, बोल डराये रखता

इसलिए हे सारथी! जाकर स्वर्ग के सम्राट से कहो
नित उतर रहा जो आसमान से, मनुज जीव अनोखा
उसे वहीं रोको, यह लघुग्रह भूमि मंडल बड़ा संकीर्ण है
कहो, पहले इसका विस्तार करो, इसमें अमरता भरो
उड़ता नाद, जो पथ्वी से लेकर सुख का कण, जिससे
बनते ऊपर सितारे-सूरज-चाँद, उसे उड़ने से रोको
वेदना पुत्र, तुम केवल जलने का अधिकारी हो
ऐसा मत कहो, बल्कि स्नेह संचित न्याय पर
विश्व का निर्माण हो सके, ऐसा कुछ करो

जब तक इस धरा पर, प्रकति और सष्टि
दोनों का सुखमय समागम नहीं होगा
तब तक मंजरी रसमत नहीं होगी, न ही
सौरभित, सरसिज युगल एकत्र खिलेगा
जब तक जीवन के संघर्षों की प्रतिध्वनियाँ
उठकर उर संगीत में विकलत भरती रहेंगी
तब तक मनुज जग जीवन में विरत, स्वप्न
लोक में भी असंतुष्ट होकर जीयेगा

महँगी

महँगी! अब तुम कहाँ से आई
क्या नभ की शम्पाओं की कड़क
ऋतु, ग्रीष्म, शीत और शरद
मनुज को स्वप्न कक्ष में करने भयभीत
कम थे, जो तुम अपनी दुर्धर पद-
चापों से, धरा मनुज की छाती को
कंपित करने, विजय-ध्वज फहराती
अम्बर छान धरा पर उतर आई

तुमको नहीं पता, तुम नहीं जानती
धरा के भूतों के इस तमस क्षेत्र में
मनुज, जीवन तष्णा, प्राण क्षुधा औ
मनोदाह से क्षुब्ध, दग्ध, जर्जर
घणा, द्वेष, स्पर्धा से पीड़ित पहले ही
वन पशुओं-सा बिखर चुका है
अन्न, वस्त्र, गह, आवागमनों के अभाव में
फिर से अहेरी जीवन बिता रहा है

आदि, व्याधि, बहु रोग क्षुधित, गिद्ध से टूटते उस पर
राग, द्वेष, स्पर्धा, कुत्सा मुख नोचते एक दूजे का परस्पर
ऐसे में तुम्हीं बताओ, इस मरणोन्मुख जगत को
कौन आश्वासन देगा, कौन उद्धार करेगा, तुमको छोड़कर
कौन जाकर खोलेगा, स्वर्गिक आभाओं का वातायण
जिससे मनुज मन के काले तम की पंखुड़ियाँ
फिर से विहँस उठे, नव जीवन का सौंदर्य बनकर
फिर से जीवन, उन्नयन नूतन बना सके संतुलन ग्रहण कर

ओ! अर्थनीति-राजनीति की प्रतिमा
साक्षी है इतिहास, जब-जब उतरी है तुम धरा पर
तब-तब मानव युग का अंत हुआ है, पराभव का
मेघ, तांडव किया है विश्व क्षितिज को घेरकर
लोग तरसे हैं, दाने-दाने को, दुधमुँहे बच्चे
रोये हैं माँ के वक्ष से अपना मुँह लगाकर
सिसकियों और चित्कारों से आकाश भरा है मानव
जीवन जीया है, शगालों, कुकुरों से भी बदतर होकर

ओ विपथगामिनी! निर्बन्ध, क्रूर नर्तन-गर्जन करना छोड़ो
अबोध संसार को काल सर्प-सा डँसना त्यागो
जो ब्याज चुकाये हैं, युवती की लज्जा, वसन बेचकर
माँ को कब्र में गाड़ आये हैं, रोटी के टुकड़े को छीनकर
जरा उसकी सोचो, कहीं फिर न जाये माँ की छाती कब्र में
जवान बेटे की मौत पर, मत इतना भी अन्याय करो
जाओ, वहीं रहो, जहाँ से आई तुम चलकर

धरा पर आया है वसंत

शिशिर, सत्कार, भीत, कंपित पावक शमित
विश्व की नग्न-भग्न डाली को करने पल्लवित
प्राची का रुद्ध कपाट खोलकर, स्वर्गोन्नत
सौंदर्य से सजल किरीट-सा उज्ज्वल
देव वतियों के संगम में, भू को स्नान कराने
देखो, स्वर्ग से धरा पर उतर आया वसंत

चतुर्दिक बिछ गईं हरित, पीत छायाएँ सुंदर
दूर्वा से भरा भू, दीखने लगी निश्छल, कोमल
लगता शीत, ताप, झंझा के बहु वार से सह
जग को आकुल देख, सुरधुन सा अपना रूप
बदलकर मति संसति, नति, उन्नति में ढल
सुषमा, मुकुल सदश स्वयं धरा पर आई उतर

खोलकर कोमल कलियों का बंद अधर
पल्लव-पल्लव में, नवल रुधिर को भर
मानो कह रहा हो वसंत, मैं सर्वमंगले
निर्विकार, शांत शून्य निलय से ज्योतिकाय
चैतन्य लोक-सा आरोहों पर निहारों का
केतन फहराता, विभक्त को युक्त, रुद्ध को मुक्त
खंड को पूरित, कुत्सित को सुंदर करने
गंध तुहिन से ग्रंथित, रेशमी पट सा
मसण समीरण को लेकर इस भूखंड पर
आया हूँ उतर, जिससे आत्म-विजय के
स्मित प्रकाश से, विस्फारित हो यह जग घर

होली

मिटे धरा से ईर्ष्या, द्वेष, अनाचार, व्यभिचार
जिंदा रहे जगत में, मानव के सुख हेतु
प्रह्लाद का प्रतिरूप बन कर प्रेम, प्रीति और प्यार
बहती रहे, धरा पर नव स्फूर्ति का शीतल बयार
भींगता रहे, अंबर-जमीं, उड़ता रहे लाल, नीला
पीला, हरा, बैंगनी, रंग-बिरंगा गुलाल

मनुज होकर मनुज के लिए महा मरण का
श्मशान न करे कभी कोई तैयार
रूखापन के सूखे पत्र झड़ते रहे
दुश्मन, दुश्मनी को भुलाकर गले मिलते रहे
जिससे, मनुष्यत्व का पद्म, जो जीवन
कंदर्प में है खिला, उसकी सुगंधित
पंखुड़ियों से भू-रज, सुरभित होता रहे
खुशियों का ढाक-नगाड़ा बजता रहे
लोग झूमे, नाचे, गाये, आनंद मनाये, कहे
देखो! धरा पर उतरी है वसंत बहार
लोग मना रहे हैं, होली का त्योहार

रूप, रस, मधु गंध भरे लहरों के
टकराने से, ध्वनि में उठता रहे गुंजार
सुषमा की खुली पंखुड़ियाँ, स्पर्शों का दल
बनकर, भावों के मोहित पुलिनों पर
छाया-प्रकाश बन करता रहे विहार
चेतना के जल में खिला रहे, कमल साकार
त्रिभुवन के नयन चित्र-सी, जगती के
नेपथ्य भूमि से निकल, दिवा की उज्ज्वल
ज्योति बन होली आती रहे बार-बार

थके चरणों में उत्सुकता भरती रहे
भू-रज में लिपटा, श्री शुभ्र धूप का टुकड़ा
रंग-बिरंगे रंगों से रँगे दीखे लाल-लाल
देख अचम्भित, आसमां कहे, देखो लगता
सष्टि ने निज सुमन सौरभ की निधियों का
मुख-पट, दिया है, धरा की ओर खोल

चारों तरफ लोग खुशियाँ मना रहे
एक दूजे से गले मिल रहे, मचा रहे शोर
फूटे डाली पर कोमल पल्लव, पी गा रही
पंचम सुर में कह रही, डाली की लड़ियों को
मंजरियों का मुकुट पहनाने आया है
वसंत बहार, लोग मना रहे होली का त्योहार

क्या यही हमारा हिंदुस्तान है

दाने-दाने को बिलख रहे बच्चे
आने-आने को तरस रहा इंसान है
हर तरफ गरीबी, भूखमरी, लूट-
पाट, नशंसता, महामारी है
धर्म, रीति-नीति अखिल म्रियमाण है
क्या यही हमारा हिंदुस्तान है

अतल गर्त में पड़ी झींख रही, सभ्यता हमारी
मनुष्यत्व का रक्त, कमि बन मानव चूस रहा है
जीवन तष्णा, प्राण क्षुधा और मनोदाह से
क्षुब्ध, दग्ध, जर्जर मनुज चीत्कार भर रहा है
घणा, द्वेष की उठी आँधियाँ, मनुज रक्त की लहरों पर
नाच रही हैं धर्म का दीपक भुवन में बुझ चुका है
तभी श्मशान में परिवर्तित हो जा रहा जीवन प्रांगण
सत्य ओझल, सामने केवल व्यवधान है
क्या यही हमारा हिंदुस्तान है

शीलमयी सकुचायी नारी, पत्तों से ढँक रही तन है
सर पर कूड़े की टोकरी, अर्द्ध खुला वक्ष है
कुसुम-कुसुम में वेदना है, नयन अधर में शाप है
गंगा की धारा-सी बह रही, अश्रुजल है
सभ्यता क्षीण, बलवान हिंस्र कानन है
क्या यही हमारा हिंदुस्तान है

धुआँ-धुआँ सब ओर, चहुं ओर घुटन है
देश की सीमा पर लड़ रहे हमारे घायल
वीर जवानों का गर्जन गुंज है, तरंग
रोष, निर्घोष, हाँक है, हुंकार है
रुंड-मुंड के लुंठन में नत्य करता कीच है
मनुज के पाँवों तले मर्दित, मनुज का मान है
क्या यही हमारा हिंदुस्तान है

लगता हमारे देश के राजनीतिज्ञों ने
आज के भारत को ध्वंस कर, नव भारत
निर्मित करने ठान लिया है, तभी तो
रज कण में सो रही किरण को दिखला-
कर कहता, प्रकति यहाँ गंभीर खड़ी है
इसे मनाने, हमें आँसू का अर्घ चढ़ाना है

रक्त पंक जब धरणी होगी तभी
रोग, शोक, मिथ्या, अविद्या मिटेगी
तभी खो रही सैकत में सरि बहेगी
क्योंकि जग की आँखों के पानी
से ही सागर, महान है
यही हमारा हिंदुस्तान है

बदलकर हम चिर विषण्ण धरती का आनन
विद्युत गति से लायेंगे उसमें परिवर्तन
वर्ग को राष्ट्र से अधिक श्रेय मिलेगा, जीवन की
करुणांत कथा का पट-पट पर बयान रहेगा
ऐसा हमारा नया हिंदुस्तान होगा

मैं तो कहूँगी, ऐसे जग में न मधु होगा
न गुंजार होगा, धूसर धूसरित अम्बर होगा
कश सरित, पंकिल सरोवर होगा
दुर्बल लता पर म्लान फूल खिलेगा
तड़पते खग, मग होंगे, रुद्ध श्वास होगा
काँप-काँपकर विपट से गिर रहा, जीर्ण पत्र होगा
पलकों पर पावस का सामान सजेगा
सुरभि रहित, मकरंदहीन हमारा हिंदुस्तान होगा

मनुज देह अवतरित हुए श्रीराम

जब-जब धरती के अंतर को, क्षत-विक्षत करने
विवर्तन की आँधी में, नाश का अंधेरा छाया
तब-तब जगती तल में, सो रही शांत सरोवर को
अपनी साँसों से तरंगित कर, कमल दल बनकर
अंगों में रूप को भरकर, धर्म भक्ति का निर्वाह करने
मनुज देह लेकर राम धरा पर अवतरित हुए
धूल-धुँध से चुनकर, अग्नि बीज पर
अपने भावों का शत प्रकाश बरसाकर
रूप, रस, गंध से झंकत किया धरती की काया

कहा, मानव! तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित
मगर सहस्र होकर करो, फिर उनमें वितरित
जिसके जीवन में आता मौन भरा प्रभात
संध्या रहती उदास भरी, जो युग-युग से हैं अभिशापित
जो अन्न-वस्त्र को तरस रहे, जो पंक में हैं पलित
जिसके जीवन का उल्लास, काँटों में है बिखरा हुआ
जो दैन्य, अभाव के ज्वर से हैं पीड़ित

हम मनुज हैं, हमें रखना होगा यह ध्यान
मनजु संस्कति बनी रहे अभिमान
माता-पिता, गुरुजन-स्वजन को वेदी मान
निज को करते चलो बलिदान, जिससे निष्ठुरता
के अँचल में कभी मुरझ न सके मनुज की
छवि सुकुमार, मधु दिन की लहर समान
तुहिन के पुलिनों पर, मनुज रहे छविमान

ज्यों प्रकति नित नर्तन में गल-गलकर
कांति, सिंधु में घुल-मिलकर
अपने स्वरूप धरती को बनाती सुंदर
त्यों निज मन के कटु संघर्षण को भुलाकर
फूलों से उड़ रहे, अदश्य रंगों को लेकर
रँगना होगा मनुज प्राण का, उर अंतर
तभी बँधेगा धर्म, रीति-नीति जीवन के संग
गिरि कुंजों में, सरित् तटों में, खिला रहेगा
मुख खोलकर, मौन मुकुल गोपन

मनुज जनम का ध्येय, धन नहीं, कति नहीं
सत्ता किरीट मणिमय आसन नहीं
मनुज तो वह है, जो चीर कलेजा अपना
औरों के सुख खातिर लहू बहाता
छोड़ सुमनों का सेज, काँटों पर सोता
मनुजता की बेलि को, प्रेम रस से सींच-
सींचकर जगत हित पनपाये रखता

भगवान महावीर (हमारे जगत पिता)

काल-तमस व्यवधान को चीरकर
साँसों से गगन को तरंगित कर
सदाचार की शुभ्र आभा से मंडित होकर
मानवता के मेरु, मनुज बुद्धि को
मनुज हृदय से संसत करने
भारत की भूमि पर, नव अरुण-सा
अवतरित हुआ, एक आत्म महान
माता-पिता ने नाम रखा वर्द्धमान

देख धरा के भूतों की तमस क्षेत्र में
जीवन तष्णा, प्राण क्षुधा और मनोदाह
से क्षुब्ध, दग्ध मानव चित्कार कर रहा
रोग, शोक, मिथ्या, अट्टहास भर रहा
खिन्न धात्री, निज रस से ही पोषित
मानव शोणित को पी रही
उनका हृदय सिंघासन डोल गया

स्वर्ग चेतना एक अविराम धारा में बहे
नव जीवन, मनुजता के सौंदर्य पद्म में
फिर से विहँस उठे, जनों की यह धरणी
गरिमा, ज्ञान, तप से स्वर्ग-घर बना रहे
सत्वों के हित, तजकर वैभव की सेज
धरा धूलि पर सोने, वन की ओर प्रस्थान किये

उन्होंने कहा घणा, द्वेष, जाति, धर्म, वर्ग युद्ध
आंदोलन, मनुज उर का संस्कार नहीं है
आँखें मूँदकर जो शील का गुण सिखलाता
वह व्यभिचारी है, उसे मनुजता से प्यार नहीं है
वह मनुज तन में पशु, रिक्त देह, नग्न आत्म है
वह नहीं चाहता, धरा से दुख-दैन्य मिटे
सहज राशि गुण सार ग्रहण कर, मानवता
स्थापित हो, यह लोक शुभ से प्रेरित रहे

नियति का यह गोलक, जो कर्मचक्र-सा घूम रहा
इसके पीछे कोलाहल, पीड़ा है घूम रही
इसमें दुख ही दुख है, दुख का पारावार नहीं है
जिसके कारण कल्याण भूमि यह लोक
मिथ्या, अतिचारी से भरा जा रहा
व्यापक, विशुद्ध विश्वासमयी प्रकति से
धरा मनुज छला जा रहा, आकुलता बढ़ती जा रही
जड़-बंधन सा एक मोह, प्राणों को कसता जा रहा
चिर प्रशांत मंगल की आशा, मिटती जा रही

अनाचार फैल रहा, धरा नरक बनी जा रही
मनुजों के देहों के मांसल रज से
धरती की मिट्टी का नव निर्माण हो रहा
इसे स्वप्न के नव प्ररोहों से जगाना होगा
लोट रही जो घणा, द्वेष हृदय खोह नागिन -सी
उसे खींचकर, बाहर लाकर दर्प भरे दग में
रंजित अधर, शत रुंडमुंड हत दिखाना होगा

तभी युग मानस का पद्म जो खिला है
इस धरती पर, वह हरा-भरा रहेगा
गली कूच, वन वीथी नगर में
सुख, आनंद, सौरभ बिछा मिलेगा
स्वप्न और जागति बीच जो भी
सुंदर है, वह सत्य में व्याप्त रहेगा

मानदोपाधि/सम्मान/पुरस्कार

1. **साहित्य महोपाध्याय**, भारतीय साहित्यकार संसद, समस्तीपुर
2. **साहित्य महोपाध्याय**, सा.सां. कला संगम अकादमी, प्रतापगढ़
3. **कवि कुलाचार्य**, अखिल भारतीय साहित्य संगम, उदयपुर
4. **विद्यासागर (डी.लिट्.)**, विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, भागलपुर
5. **विद्यासागर (डी.लिट्.)**, विश्व हिंदी सा. सेवा संस्थान, इलाहाबाद
6. **विद्यासागर (डी.लिट्.)**, भारतीय साहित्यकार संसद, समस्तीपुर
7. **साहित्य वारिधि (डी.लिट्.)**, सा.सां. कला संगम अकादमी, प्रतापगढ़
8. **विद्या वारिधि (डी.लिट्.)**, विश्व हिंदी सा.सेवा संस्थान, इलाहाबाद
9. **विद्या वारिधि (डी.लिट्.)**, भारतीय साहित्यकार संसद, समस्तीपुर
10. **कवि सम्राट**, अखिल भारतीय साहित्य संगम, उदयपुर
11. **विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.)**, विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, ईशीपुर, भागलपुर
12. **विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.)**, सा.सां. कला संगम अकादमी, प्रतापगढ़
13. **अंग गौरव उपाधि**, विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, भागलपुर
14. **Rajiv Gandhi Award, 2008,** New Delhi.
15. **'World Lifetime Achievement Award,** American Biographical Institute.
16. **Woman of The Year Award, 2007,** American Biographical Institute.
17. **'Rising Personalities of India Award-2006',** Int. Penguin P. House, Delhi.
18. **Gold Medal, 2006** Int. Penguin Pub. House, Delhi.
19. **Bharat Jyoti Award,** IIFS, New Delhi.
20. **Certificate of Excellence, 2008** IIFS, New Delhi
21. **Best Citizens of India Award, 2008** Int. Pub. House, New Delhi.
22. **Rashtriya Samman Puraskar, 2008,** I.S.I.I.D. (Delhi)
23. **Gold Medal, 2008** I.S.I.I.D. (Delhi)
24. **Mother Terisa Award, 2008** New Delhi
25. **Gold Medal, 2008** I.S.I.I.D. (Delhi)
26. **Rashtriya Gaurav Ratan Award,** ISIID, New Delhi
27. **Gold Medal,** New Delhi
28. **नागार्जुन आहट शिखर साहित्य सम्मान-2007**, शाम्भवी सदन, दरभंगा
29. **तुलसी सम्मान-2007**, मध्यप्रदेश तुलसी साहित्य अकादमी, भोपाल
30. **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सम्मान**, हिंदी भाषा सम्मेलन, पटियाला
31. **निराला सम्मान**, शब्द-कारखाना, जमालपुर (बिहार)
32. **महादेवी वर्मा सम्मान**, अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति, मथुरा
33. **संत कवि कबीर पुरस्कार-2005,** अनोखा विश्वास, इंदौर (म॰प्र॰)

34. **सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान**, अंतर्राष्ट्रीय पराविद्या शोध संस्था, कल्याण (महाराष्ट्र)
35. **श्रीमती केसर बाई सोनी स्मृति सा.रा. शिखर सम्मान**, भीलवाड़ा, राजस्थान
36. **बाबा साहेब अम्बेडकर साहित्य रत्न पुरस्कार**, अनोखा विश्वास, इन्दौर
37. **हिंदी रत्न,** अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान अकादमी, कुशीनगर (उ.प्र॰)
38. **ऋतंभरा रत्न-2006,** ऋतंभरा साहित्यिक मंच, दुर्ग
39. **हिंदी सेवी सम्मान**, जैमिनी अकादमी, पानीपत (हरियाणा)
40. **भारती भूषण सम्मान,** राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद
41. **साहित्यश्री सम्मान,** अ.भा.भा.सा. सम्मेलन (केन्द्रीय संस्था), भोपाल
42. **हिंदी काव्य रत्न**, अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान अकादमी, कुशीनगर (उ.प्र.)
43. **श्रेष्ठ साधना सम्मान**, अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन (केन्द्रीय संस्था) भोपाल
44. **वीरांगना सावित्री बाई फुले फेलोशिप अवार्ड-2005**, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली
45. **राष्ट्रभाषा विद्यालंकार**, अखिल भारतीय साहित्य कला परिषद, कप्तानगंज
46. **साहित्य सुमन**, अंतर्राष्ट्रीय पराविद्या शोध संस्था, कल्याण (महाराष्ट्र)
47. **साहित्य गौरव सम्मान,** खानकाह सूफी दीदार शाह चिश्ती, मुंबई
48. **विशिष्ट सम्मान-2005**, प्रबंध निदेशक, बिहार स्टेट टेक्स्ट बुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, पटना
49. **कवयित्री महादेवी वर्मा सम्मान,** विश्व हिंदी साहित्य सेवा संस्थान, इलाहाबाद
50. **भाषा रत्न सम्मान,** जेमिनी अकादमी, पानीपत (हरियाणा)
51. **साहित्य प्रभा सर्वोच्च ज्ञानमाला पुरस्कार-2006,** दून द्रोण आदिम विकास समिति, देहरादून
52. **पूर्व-पश्चिम काव्य गौरव सम्मान,** जागृति प्रकाशन, मुंबई
53. **मोड़ूराम मीणा स्मृति राष्ट्रीय सम्मान**, साहित्यांचल, भीलवाड़ा, राजस्थान
54. **काव्य प्रतिभा सम्मान**, अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान अकादमी, कुशीनगर
55. **राष्ट्र गौरव साहित्य सृजन सम्मान,** सुरभि साहित्य संस्कृति अकादमी, खण्डवा
56. **मीरा रजत स्मृति सम्मान,** हिंदी भाषा साहित्य परिषद, खगड़िया (बिहार)
57. **राष्ट्र काव्य गौरव**, खानकाह सूफी दीदार शाह चिश्ती, ठाणे (नवी मुंबई)
58. **मुंबई रत्न**, जैमिनी अकादमी, पानीपत (हरियाणा)
59. **स्व. श्री हरिठाकुर स्मृति सम्मान,** पुष्पगंधा प्रकाशन (छत्तीसगढ़)
60. **हिरदे कवि रत्न सम्मान,** छत्तीसगढ़ शिक्षक साहित्यकार मंच
61. **विशिष्ट साहित्य साधना सम्मान**, अखिल भाषा साहित्य सम्मेलन, भोपाल
62. **काव्य मधुरिमा,** अखिल भारतीय साहित्य संगम, आयड़ (उदयपुर)
63. **आरसी प्रासद स्मृति रजत सम्मान, 2007,** हिंदी भाषा साहित्य परिषद्, खगड़िया
64. **काव्य भूषण,** काव्य लोक संचालन समिति, जमशेदपुर
65. **मधुमिश्रित आकांक्षा साहित्य सम्मान,** सुरभि साहित्य संस्कृति अकादमी, खण्डवा
66. **समन्वय श्री सम्मान,** अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन (केन्द्रीय संस्था) म॰प्र॰
67. **हिंदी गौरव सम्मान,** अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान अकादमी, कुशीनगर (उ.प्र॰)
68. **राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान,** अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा विकास संगठन, गाजियाबाद
69. **भारत गौरव सम्मान,** ऋचा प्रकाशन, कटनी, म.प्र.

70. **हिंदी काव्य ज्योति सम्मान,** खानकाह सूफी दीदार शाह चिश्ती, ठाणे (नवी मुंबई)
71. **साहित्य शिरोमणि,** मानव कल्याण संघ, दादरी (भिवानी)
72. **रंजन कलश शिव सम्मान-2006,** रंजन कलश, भोपाल
73. **सम्मान प्रमाण-पत्र**, अखिल भारत वैचारिक क्रांति मंच, लखनऊ
74. **राष्ट्रीय साहित्य शिखर सम्मान**, भारतीय साहित्यकार संसद, समस्तीपुर, बिहार
75. **भारतीय रत्न सम्मान**, राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद
76. **ऋतंभरा साहित्य मणि सम्मान**, ऋतंभरा साहित्यिक मंच, दुर्ग
77. **सम्मान प्रमाण-पत्र**, अ.भा. कवयित्री सम्मेलन, विद्यापीठ महोत्सव, भागलपुर
78. **कवि शिरोमणि**, विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, भागलपुर
79. **स्मृति साहित्यश्री सम्मान**, श्री मुकुन्द मुरारी स्मृति सा. माला, कानपुर
80. **सम्मान प्रमाण-पत्र**, आदित्य साहित्यिक संस्था, कानपुर
81. **सारस्वत साहित्य सम्मान**, भारतीय वाङ्मय पीठ, कोलकाता
82. **मधुरिमा रत्न,** इतिहास एवं पुरातत्व शोध संस्थान, मध्यप्रदेश
83. **साहित्य रत्न सम्मान,** तरुण सांस्कृतिक चेतना समिति, समस्तीपुर
84. **जनकवि मानदोपाधि**, समग्रता शिक्षा साहित्य एवं कला परिषद, कटनी
85. **काव्य मर्मज्ञ सम्मान,** इन्द्रधनुष साहित्यिक संस्था, बिजनौर, उत्तरप्रदेश
86. **साहित्य गौरव अवार्ड,** श्री महादेव संस्थान, वर्धा, महाराष्ट्र
87. **स्व. रामकिशन दास स्मृति गीति-साहित्य सम्मान,** अ.भा.सा. कला मंच, मुरादाबाद
88. **साहित्य शिखर सम्मान-2007**, मनु प्रकाशन, बालाघाट
89. **अभिव्यक्ति सम्मान-2007**, दृष्टि, भार्गव कॉलोनी, गुना, म.प्र.
90. **साहित्य मनीषी सम्मान**, म.प्र. नवलेखन संघ, भोपाल
91. **कवि रत्न सम्मान**, जेमिनी अकादमी, पानीपत
92. **काव्य गौरव सम्मान-2007**, आकृति प्रकाशन, पीलीभीत, उ.प्र.
93. **शान-ए-अदब**, शबनम साहित्य परिषद, सोजत सिटी, राजस्थान
94. **साहित्य सेवा सम्मान-2007**, छ.ग. शिक्षक साहित्यकार मंच, दुर्ग
95. **स्व. महादेवी वर्मा स्मृति सम्मान**, पुष्पगंधा प्रकाशन, कवर्धा, छ.ग.
96. **सम्मान प्रमाण-पत्र**, श्री हिन्दू विश्व प्रसार प्रतिष्ठान, कानपुर
97. **देवभूमि साहित्य रत्न,** देवभूमि साहित्यकार मंच, पिथोरागढ़
98. **रमेश प्रसाद-सरलादेवी हिंदी भूषण अलंकरण,** अभियान, जबलपुर
99. **सम्मान पत्र,** तारिका विचार मंच, प्रयाग
100. **माता अमर कौर सम्मान, 2008,** अ. भाषी हिंदी लेखक संघ, दिल्ली
101. **न्यू ऋतंभरा सद्भावना साहित्य सम्मान,** न्यू ऋतंभरा साहित्य मंच, दुर्ग
102. **निराला स्मृति रजत सम्मान-2006,** हिंदी भाषा साहित्य परिषद्, खगड़िया
103. **भारत भूषण सम्मान, 2008,** लोक भारती सेवा संस्थान, सुलतानपुर
104. **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्मृति रजत सम्मान, 2008,** हिंदी भाषा साहित्य परिषद्, खगड़िया
105. **स्व. सरस्वती पाण्डेय स्मृति सम्मान,** विन्ध्यवासिनी हिंदी विकास संस्थान, नई दिल्ली

106. **स्व. ज्ञानी अमर सिंह जोबन सम्मान,** अ. भाषी हिंदी लेखक संघ, दिल्ली
107. **फनकार-ए-गजल सम्मान,** आकृति साहित्य मंच, पीलीभीत, उत्तरप्रदेश
108. **हिंदी भाषा भूषण सम्मान,** साहित्य मंडल श्रीनाथद्वारा, राजस्थान
109. **ब्रज गौरव मानदोपाधि,** आसरा समिति, बलदेव, मथुरा
110. **काव्य शिरोमणि,** नवयुग साहित्य संगम, लखनऊ
111. **सा. प्र. साहित्यकार कुलभूषण सम्मान, 2008,** दून द्रोण आदिम विकास समिति, देहरादून
112. **पंचशील शिरोमणि सम्मान,** पंचशील चैरिटेबल सोसाइटी, नई दिल्ली
113. **सम्मान पत्र,** सामयिकी, भीलवाड़ा, राजस्थान
114. **सम्मान शिरोमणि,** अखिल भारतीय सि.स.से.सो., नई दिल्ली

फिल्मी गीत

'सिपाई जी' (अनमोल प्रोडक्शन, मुंबई) हिंदी फिल्म के लिए टाइटिल सौंग।

सदस्यता

1. संरक्षक, विश्व स्नेह समाज राष्ट्रीय मासिक पत्रिका, इलाहाबाद
2. संरक्षक, साहित्यांचल, भीलवाड़ा
3. सलाहकार, साहित्य सरोवर, कर्नाटक
4. दी फिल्म राइटर्स एसोसियेशन, अंधेरी, मुंबई की सदस्यता
5. अ.भा. भाषा साहित्य सम्मेलन, केन्द्रीय संस्था, भोपाल की आजीवन सदस्यता
6. संरक्षक-परामर्शदाता मंडल, अ.भा.भा.सा.अभि.समिति, मथुरा की आजीवन सदस्यता
7. अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन, खुरजा, उत्तरप्रदेश की आजीवन सदस्यता

जीवन वृत्त प्रकाशित

1. **एफ्रो-एशियन हूज हू, खंड-1 (2006)**
2. **एशिया-पैशेफिक हूज हू, खंड-6 (2006)**
3. **राइजिंग पर्सोनालिटी ऑफ इंडिया बुक (2006)**
4. **बेस्ट सिटिजेंस ऑफ इंडिया बुक (2008)**

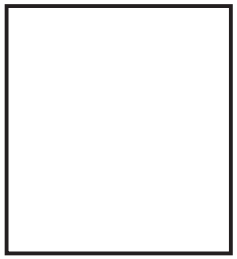

नाम : **डॉ॰ (श्रीमती) तारा सिंह**

पति : **डॉ. ब्रह्मदेव प्रसाद सिंह,**
भूतपूर्व प्राचार्य, रीडर एवं रसायन विभागाध्यक्ष, आचार्य जगदीश चन्द्र बसु महाविद्यालय (कलकत्ता)

सम्प्रति : उपाध्यक्ष, विश्व हिंदी सेवा संस्थान, इलाहाबाद; अध्यक्ष, स्वर्ग विभा वेबसाइट

सम्मान/पुरस्कार
: 89 विभिन्न संस्थाओं द्वारा साहित्य महोपाध्याय, कवि कुलाचार्य, विद्या वारिधि, विद्यावाचस्पति, कबीर पुरस्कार, साहित्य शिरोमणि, भारती रत्न आदि सम्मानों/पुरस्कारों से सम्मानित।
(पृ. 78-80 द्रष्टव्य)

स्वरचित काव्य-संग्रह : प्रकाशित-15, प्रकाशनाधीन-3
एक बूंद की प्यासी, सिसक रही दुनिया, हम पानी में भी खोजते रंग, एक पालकी चार कहार, साँझ भी हुई तो कितनी धुँधली, एक दीप जला लेना, रजनी में भी खिली रहूँ किस आस पर, अब तो ठंढी हो चली जीवन की राख, यह जीवन प्रातः समीरण-सा लघु है प्रिये, तम की धार पर डोलती जगती की नौका, विषाद नदी से उठ रही ध्वनि, नदिया-मोह बूँद सिकता बनती, नगमें हैं मेरे दिल के, यह जीवन केवल स्वप्न असार, सिमट रही संध्या की लाली

काव्य-संकलनः 56 पुस्तकों में सह-लेखन

फिल्मी-गीत : हिंदी फिल्म 'सिपाई जी' के लिए टाइटिल गीत के रूप में

संपर्क : बी-605, अनमोल प्लाजा, प्लॉट नं.-7, सेक्टर-8, खारघर, नवी मुंबई-410210,

दूरभाष : 022-32996316, 09967362087

डॉ. तारा सिंह की लेखनी से निकला साहित्य जनसाधारण की समस्याओं पर आधारित है। इनकी लेखनी सारगर्भित काव्य की रचना कर एक आदर्श साहित्य सुलभ कराने में पूर्ण रूप से सक्षम है और यह सिर्फ भावुकता ही नहीं, बल्कि समय-समय पर जुल्म और अन्याय के प्रति शोले और अंगारे भी बरसाते नजर आती हैं। साथ ही, आस्था, विश्वास और शौर्य भी इनका संबल प्रतीत होता है जिसे ये छोड़ने के पक्षधर बिल्कुल नहीं हैं।

डॉ. तारा सिंह जी अपनी कला-साधना के बल पर ही इतने कम समय में साहित्याकाश पर अटल नक्षत्र की भांति स्थापित हो गई हैं तथा इनको अनेक साहित्यिक संस्थानों ने भी सम्मान प्रदान किया है। राष्ट्र के विभिन्न ख्यातिप्राप्त साहित्यिकारों द्वारा भी इनकी सुयोग्य लेखनी को मुक्तकंठ से सराहते हुए, अपने स्वतंत्र विचारों द्वारा खुलकर इनके साहित्य की प्रशंसा की गई है।

मोहन कुमार
संपादक-आकृति प्रकाशन, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश

डॉ. तारा सिंह की कविताएँ भाषा, शिल्प एवं कथ्य की दृष्टि से इनकी सृजनात्मक और कलात्मक प्रतिभा के उदाहरण हैं। इनकी सोच में इंसान के आपसी रिश्तों की नजाकत और सदाकत साफ झलकती है। ये खुद कहती हैं **लघु-लघु प्राणियों के अश्रुजल से बनता समंदर**। इनकी कविताएँ खुद बोलती हैं और अंतर्मन में कहीं गहरे जाकर बस जाती हैं। साधुवाद।

डी. के. सचदेवा
वरीय साहित्यकार, लुधियाना, पंजाब

ISBN : 978-81-89264-95-6

Inside Flap-1